मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 120 ● वर्ष 13, अंक 5 ● जुलाई 2023 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मिथकों को यथार्थ बनाने के आरएसएस के प्रयोग 7

उत्तराखण्ड : हिन्दुत्व की नई प्रयोगशाला 8

रूस-यूक्रेन युद्ध : तबाही और बर्बादी के 500 दिन 11

समान नागरिक संहिता के पीछे मोदी सरकार की असली मंशा है साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण जिसकी फसल 2024 के लोकसभा चुनावों में काटी जा सके!

स्त्री-पुरुष समानता सुनिश्चित करने वाली जनवादी, सेक्युलर व समानतामूलक समान नागरिक संहिता अवश्य होनी चाहिए, मगर उसे किसी पर जबरन थोपा नहीं जा सकता!

सम्पादकीय अग्रलेख

तथाकथित समान नागरिक संहिता को मुसलमान आबादी पर थोपना चाहती है और असल में वह समान नागरिक संहिता के नाम पर हिन्दू पर्सनल लॉ को ही विशेष तौर पर मुसलमान आबादी पर थोपना चाहती है, जो कि उनकी धार्मिक व निजी आज़ादी का हनन होगा और इस प्रकार साम्प्रदायिक तनाव और ध्रुवीकरण को बढ़ाने का उपकरण मात्र होगा। मुसलमान औरतों के प्रति भाजपाइयों और संघियों के पेट में कितना दर्द है, यह सभी जानते हैं।

सबसे पहले तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि मोदी सरकार जिस वजह से समान नागरिक संहिता को लागू करने की बात कर रही है, उसके पीछे न तो "मुस्लिम बेटियों" के प्रति कोई सरोकार है, न समान नागरिक संहिता के जनवादी, सेक्युलर और समानतामूलक सिद्धान्त के प्रति कोई प्रतिबद्धता है। तो फिर भाजपा की मोदी सरकार समान नागरिक संहिता को लेकर हल्ला क्यों मचा रही है? इस बार हम इसी प्रश्न को अच्छी तरह से समझेंगे।

यदि मुसलमान औरतों के प्रति भाजपा का कोई सरोकार होता तो उसके नेता मुसलमान स्त्रियों को कब्र से निकालकर उनके बलात्कार का आह्वान मंचों से न करते, गुजरात के दंगों में मुसलमान औरतों का सामूहिक बलात्कार, गर्भ चीरकर भ्रूण निकालने जैसी वीभत्स और बर्बर घटनाएँ आर.एस.एस. व भाजपा के गुण्डों द्वारा न अंजाम दी जातीं। अगर उन्हें मुसलमान औरतों के प्रति न्याय को लेकर इतना दर्द उमड़ रहा होता तो बिलकिस बानो के बलात्कारियों और उसके बच्चे और परिवार के हत्यारों को भाजपा सरकार बरी न करती, न ही माया कोडनानी और बाबू बजरंगी जैसे लोग बरी होते या उन्हें पैरोल मिलती। साफ़ है कि मुसलमान औरतों के प्रति चिन्ता का हवाला देकर भाजपा विधि आयोग गठित किया था जिसे इस मसले पर अपनी रिपोर्ट देनी थी। इस आयोग ने जो रिपोर्ट दी उसके अनुसार समान नागरिक संहिता को लागू करने के बजाय, तमाम धार्मिक निजी कानूनों में सुधार करके उसे ज़्यादा प्रगतिशील बनाने का सुझाव दिया गया। ज़ाहिर है, यह सुझाव मज़दूर वर्ग के नज़रिये से सही नहीं है। लेकिन मोदी सरकार ने उस रिपोर्ट को भी दरकिनार कर दिया और अब एक नया विधि आयोग बना दिया है, जिसे फिर से इसी मसले पर जाँच करनी है! **इसकी एक वजह यह भी है कि पिछले विधि आयोग की रिपोर्ट ने मुस्लिम पर्सनल लॉ के अतिरिक्त हिन्दू पर्सनल लॉ में स्त्रियों के प्रति मौजूद गैर-बराबरी को भी चिन्हित किया था और दिखलाया था कि तमाम सुधारों के बावजूद अभी भी हिन्दू पर्सनल लॉ स्त्रियों के प्रति असमानतापूर्ण रुख रखता है।**

यह भी ग़ौरतलब है कि मोदी सरकार पिछले 9 सालों में समान नागरिक संहिता का कोई मसौदा लेकर नहीं आयी है। इसका इस्तेमाल केवल साम्प्रदायिक तनाव फैलाने के लिए किया जा रहा है। मोदी सरकार ने स्पष्ट ही नहीं किया है कि इसके आने पर सभी पर्सनल लॉ समाप्त होंगे या नहीं, यह समान नागरिक संहिता कहीं हिन्दू पर्सनल लॉ का ही एक संस्करण तो नहीं होगी, क्या इसमें सम्पत्ति के

(पेज 9 पर जारी)

लगातार घटती हुई सरकारी नौकरियाँ – 2010 से अब तक सबसे कम

● लालचन्द्र

देश की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है। स्वाभाविक है कि इस बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती ज़रूरतों को पूरा करने के लिए सरकारी अमले का भी विस्तार होना चाहिए, कर्मचारियों की संख्या बढ़नी चाहिए। लेकिन हो रहा है इसका ठीक उल्टा। ग़ौरतलब है कि जनसंख्या में बढ़ोत्तरी अपने आप में समस्या नहीं होती क्योंकि सामाजिक आवश्यकताएँ भी जनसंख्या के साथ बढ़ती हैं, उत्पादन की आवश्यकता बढ़ती है और यदि व्यवस्था ऐसी हो जिसका लक्ष्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना हो, तो हर हाथ को काम देना भी सम्भव होता है। साथ ही, प्राकृतिक संसाधन भी किसी कटोरी में रखी शक्कर नहीं है, जिसे इंसानियत खाते-खाते एक दिन ख़त्म कर देगी। यदि एक जनपक्षधर व्यवस्था हो तो वह प्रकृति के साथ एक ऐसा रिश्ता बना सकती है, जिसमें वह जितने संसाधनों का उपभोग करती है, उससे ज़्यादा संसाधनों को पैदा करती है। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का संकट भी व्यवस्था का पैदा किया संकट है, न कि यह केवल जनसंख्या के कारण पैदा हुआ है।

बहरहाल, हम देखते हैं कि सरकारी नौकरियों की स्थिति आज क्या हो गयी है।

वित्त मंत्रालय की ओर से जारी नवीनतम 'वेतन एवं भत्तों पर वार्षिक रिपोर्ट' के अनुसार केन्द्र सरकार में कुल स्वीकृत पदों की संख्या 39.77 लाख रह गयी है जोकि पिछले 3 वर्षों में सबसे कम है। इनमें से 9.64 लाख पद ख़ाली पड़े हैं, यानी इस वक्त केन्द्र सरकार के कुल कर्मचारियों की संख्या सिर्फ़ 30.13 लाख है। यह संख्या 2010 के बाद से सबसे कम है। इसमें सेना के पद शामिल नहीं हैं।

मोदी सरकार हर साल 2 करोड़ रोज़गार देने का जुमला उछालकर 2014 में सत्ता में आयी थी। लेकिन रोज़गार देने की बात तो दूर, पिछले नौ सालों में सरकारी विभागों, सार्वजनिक क्षेत्रों, निगमों से लेकर प्राइवेट सेक्टर तक में अभूतपूर्व रूप से छँटनी हुई है। जुलाई 2022 में केन्द्रीय कार्मिक राज्य मन्त्री जितेन्द्र सिंह ने लोकसभा में बताया कि मोदी सरकार के 8 वर्षों के कार्यकाल में लगभग 22 करोड़ लोगों ने नौकरी के आवेदन किये थे, जिसमें से केवल 7.22 लाख लोगों को ही नौकरी मिल पायी है।

मार्च 2021 से मार्च 2022 के बीच केन्द्र सरकार के कुल स्वीकृत पदों की संख्या में 58000 की कमी हो गयी। स्वीकृत पदों और कार्यरत कर्मचारियों की संख्या में कमी सभी विभागों में हुई है। रेलवे, रक्षा (नागरिक), गृह, डाक और राजस्व से जुड़े विभागों और मंत्रालयों में केन्द्र सरकार के 92

(पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर
देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत
आज भी सच्ची आज़ादी और इंसाफ़ के लिए लड़ रहे
हर नौजवान के प्रेरणास्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के जन्मदिवस (23 जुलाई) के अवसर पर
देश को मुनाफ़ाख़ोर लुटेरों और उनके फ़ासिस्ट चाकरों के चंगुल से आज़ाद कराने के लिए संघर्ष का संकल्प लो!

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

साक्षी की हत्या को 'लव जिहाद' बनाने के संघ की कोशिश को 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के नेतृत्व में शाहबाद डेरी की जनता ने नाकाम किया

● भारत

बीती 28 मई की रात को दिल्ली के शाहाबाद डेरी के बी-ब्लॉक में 16 वर्षीय साक्षी नाम की एक नाबालिक लड़की की चाकू से गोदकर और उसके बाद पत्थर से कुचलकर आरोपी साहिल द्वारा हत्या कर दी गयी। पूरा मामले का पता सीसीटीवी फुटेज से मिला। युवती इलाक़े के ई-ब्लॉक की निवासी थी। उस रात साक्षी अपनी एक दोस्त के बेटे के जन्मदिन पार्टी में शिरकत करने जा रही थी, आरोपी साहिल युवती का कई महीनों से उसका पीछा कर रहा था। उस रात दोनों के बीच झगड़ा हुआ जिसके बाद साहिल ने साक्षी की जान ले ली।

शाहाबाद डेरी में यह घटना अनायास ही नहीं हो गयी। पूरे इलाक़े में नशाखोरी-छेड़खानी बड़े पैमाने पर फैली हुई है। हर नुक्कड़ चौराहे पर लम्पट महिलाओं को छेड़ते हैं। साहिल भी उनमें से एक था। सच्चाई यह है कि अधिकांश लम्पट तो स्वयं भाजपा-आम आदमी पार्टी से जुड़े होते हैं। इन पार्टियों के तमाम नेता इन गुण्डों को शह देते हैं ताकि चुनाव के समय इनका इस्तेमाल कर सकें। इस इलाक़े में इस तरह की यह कोई पहली घटना नहीं है। इससे पहले भी कई बार बच्चियों व स्त्रियों से बलात्कार के मामले सामने आ चुके हैं। कुछ वर्ष पहले पाँच साल की बच्ची मुस्कान के साथ भी बलात्कार और हत्या की घटना सामने आयी थी। इलाक़े के लोगों के एकजुट होने के बाद ही इसपर कारवाई हुई। अन्यथा पुलिस प्रशासन कान में तेल डालकर सोया था। इसके बाद भी इलाक़े में छेड़खानी और स्त्री उत्पीड़न की घटनाएँ सामने आती रहीं, पर यहाँ भाजपा और आम आदमी पार्टी के नेता आँख बन्द करके बैठे रहे। साथ ही इलाक़े में आम लोगों के सुरक्षा भी बहुत खस्ताहाल है। यहाँ पिछले छह महीने में बर्बर हत्या की चार घटनाएँ सामने आ चुकी हैं। इससे पहले दो युवकों के शव इलाक़े के नाले से बरामद हुए थे, इसके कुछ दिनों बाद एक युवक का शव सड़क के किनारे मिला था और एक युवक का शव पास के गाँव में मिला था। लेकिन इन तमाम घटनाओं के बावजूद सरकार आँख मूँदकर बैठी रहीं।

शाहाबाद डेरी में संघ के 'लव जिहाद' के प्रयोग को असफल कर दिया गया। पहले तो इलाक़े में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ताओं और लोगो ने एकजुट होकर संघियों को इलाक़े से खदेड़ दिया। इसके बाद इलाक़े में संघियों को चेतावनी देते हुए और हत्यारे साहिल को कठोर सज़ा देने की माँग करते हुए रैली निकाली गयी। इलाक़े से खदेड़े जाने के बाद से और 'लव जिहाद' का मसला न बन पाने के कारण संघी बौखलाये हुए थे। संघ के अनुषांगिक संगठनों द्वारा इलाक़े का माहौल ख़राब करने के मक़सद से सभा भी बुलायी गयी और मुस्लिमों के ख़िलाफ़ खुलकर ज़हर उगला गया, पर इनकी यह कोशिश भी नाक़ाम रही। इनकी सभा के बरक्स ही भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की सभा भी जारी रही। महिला सुरक्षा के मद्देनज़र दुर्गा भाभी स्क्वॉड की भी स्थापना की गयी जिसके तहत महिलाओं व लड़कियों को मार्शल आर्ट और आत्मरक्षा की ट्रेनिंग दी जायेगी, ताकि आगे से लम्पटों-शोहदों को ज़वाब दिया जा सके और स्त्री विरोधी अपराधों को रोक लगायी जा सके। यह दिखलाता है कि जब लोग एकजुट हों तो इन दंगाइयों को भी रोका जा सकता है। साथ ही बढ़ते स्त्री विरोधी अपराधों पर भी लगाम लगायी जा सकती है।

आज समझने की ज़रूरत है कि देश भर में लगातार स्त्री विरोधी अपराध बढ़ क्यों रहे हैं? स्त्रियों पर हमला करने वाले आदमख़ोर भेड़िए बेख़ौफ़ घूमते रहते हैं। हिफ़ाज़त के लिए बनी संस्थाएँ ही स्त्रियों की सबसे बड़ी दुश्मन बन चुकी हैं। ऐसी हर घटना के बाद सरकार से लेकर सभी विपक्षी चुनावी पार्टियाँ तक जमकर घड़ियाली आँसू बहाती हैं। लेकिन यही पार्टियाँ हैं जो लोकसभा और विधानसभा चुनावों में स्त्री-विरोधी अपराधों के सैकड़ों आरोपियों को टिकट देती हैं। हर चुनावी पार्टी में बलात्कार, भ्रष्टाचार, हत्या आदि के आरोपी भरे हुए हैं। लेकिन ऐसे अपराधियों का बेशर्मी से बचाव करने में भाजपा और संघ परिवार ने सबको पीछे छोड़ दिया है। पिछले तीन दशकों से जारी आर्थिक नीतियों ने 'खाओ-पियो ऐश-करो' की संस्कृति में लिप्त एक नवधनाढ्य वर्ग पैदा किया है जिसे लगता है कि पैसे के बूते पर वह सबकुछ ख़रीद सकता है। पूँजीवादी लोभ-लालच और हिंस्र भोगवाद की संस्कृति ने स्त्रियों को एक 'माल' बना डाला है, और पैसे के नशे में अन्धे इस वर्ग के भीतर उसी 'माल' के उपभोग की उन्मादी हवस भर दी है। इन्हीं लुटेरी नीतियों ने एक आवारा, लम्पट, पतित वर्ग भी पैदा किया है जो पूँजीवादी अमानवीकरण की सभी हदों को पार कर चुका है। आज हर नुक्कड़-गली-चौराहे पर शोहदे महिलाओं को छेड़ते हैं और इनकी ऐसी मानसिकता इस व्यवस्था द्वारा बनायी जाती है। बार-बार स्त्रियों के साथ होने वाली नृशंसता इसकी गवाही देती है। इस सबको निरन्तर खाद-पानी देती है हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तात्मक मानसिकता, जो स्त्रियों को भोग की वस्तु और बच्चा पैदा करने का यंत्रभर मानती है, और हर वक़्त, हर पल स्त्री-विरोधी मानसिकता को जन्म देती है। समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए आगे बढ़ी स्त्री ऐसे लोगों की आँखों में खटकती है और वे उसे "सबक़ सिखाने" में जुट जाते हैं। आज पूँजीवादी व्यवस्था स्त्री विरोधी सोच को बढ़ावा दे रही है। दिमाग़ में ज़हर घोलने वाली संस्कृति लोगो के बीच परोसी जा रही है, जिसके माध्यम से स्त्रियों को भी उपभोग की वस्तु बनाया जा रहा है।

मोदी सरकार के आने के बाद से स्त्री विरोधी घटनाएँ अपने चरम पर है। आज भारत महिलाओं के लिये सबसे असुरक्षित देश बन चुका है। हर एक घण्टे में 3 महिलाओं के साथ बलात्कार होता है। तमाम केन्द्र शासित प्रदेशों में सबसे अधिक महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध दिल्ली में दर्ज हुए हैं। दिल्ली पुलिस द्वारा जारी डाटा के आधार पर 'द हिन्दू' में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक़ दिल्ली में 2021 के पहले छह महीने में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराध में 63.3% की बढ़ोतरी हुई है। वहीं देशभर में स्त्री विरोधी अपराधों की जैसे बाढ़ आ गयी है। 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' (एनसीआरबी) की एक रिपोर्ट के अनुसार 2019 में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों में 7% की वृद्धि हुई है। 2018 में 3,78,236 महिला-विरोधी आपराधिक मामले दर्ज किये गये। नवम्बर 2017 में आयी 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' की रिपोर्ट के मुताबिक़ साल 2016 में कुल 3,38,954 स्त्री विरोधी आपराधिक मामले दर्ज हुए हैं। 2016 में अकेले बलात्कार के 38,947 मामले दर्ज हुए थे ! 18 जुलाई, 2018 को गृह राज्य मंत्री किरण रिजिजु के संसदीय बयान के अनुसार 2014 से 2016 के बीच बलात्कार के 1,10,333 केस सामने आये। एनसीआरबी की ही रिपोर्ट के अनुसार 2007 से 2016 तक स्त्री विरोधी अपराधों में 83 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। ये वो आँकड़े हैं जिनकी शिकायत दर्ज हो पाती है, जबकि सच्चाई इससे कहीं अधिक भयावह है क्योंकि अधिकांश मामलों में तो शिकायत भी नहीं दर्ज हो पाती है।

आज सत्ता में वे ही लोग हैं जिन्होंने कुलदीप सिंह सेंगर से लेकर चिन्मयानन्द जैसे बलात्कारियों-अपराधियों को बचाने में दिन-रात एक कर दिये थे। जम्मू में एक 8 वर्षीय बच्ची के बलात्कारियों और हत्यारों के समर्थन में इन्होंने रैलियाँ तक आयोजित की थीं। यह भी भूलना नहीं चाहिए कि 2002 में गुजरात में सैकड़ों मुस्लिम स्त्रियों के साथ सामूहिक बलात्कार के बाद उनकी हत्या करने वाले लोग यही थे। हाथरस में बलात्कार और हत्या की शिकार लड़की के अपराधियों को बचाने के लिए योगी सरकार ने आधी रात को ज़बरन उसकी लाश जलवा दी थी। इनके नारी सशक्तीकरण और बेटी-बचाओ के नारों के ढोल की पोल इस बात से खुल जाती है कि आज भारत महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित देशों की सूची में सबसे ऊपर पहुँच चुका है। जिन लोगों की विचारधारा में बलात्कार को विरोधियों पर विजय पाने के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता हो, जिस पार्टी का इतिहास ही बलात्कारियों को संरक्षण देने का रहा हो क्या उनसे हम स्त्रियों के लिए न्याय, सम्मान, सुरक्षा और आज़ादी की उम्मीद कर सकते हैं? जब सत्ता में ही ऐसे फ़ासिस्ट विराजमान होंगे तो समाज में भी इनके द्वारा पोषित पितृसत्तात्मक पाशविकता और घोर स्त्री-विरोधी मानसिकता को बल मिलेगा। ज्ञात हो कि भाजपा के 40 प्रतिशत से अधिक सांसदों, विधायकों के ऊपर बलात्कार, हत्या के गम्भीर मामले दर्ज हैं। भाजपा ऐसे अपराध करने वालो के लिये सबसे भरोसेमंद पार्टी है, इसी कारण आज भाजपा में अच्छी-ख़ासी संख्या में स्त्री विरोधी अपराधी भरे पड़े हैं। महिला पहलवानों का संघर्ष भी भाजपा सांसद बृजभूषण के ख़िलाफ़ ही है। आज बलात्कारी भाजपा में शामिल होकर "संस्कारी" बन जाता है!

साक्षी के मसले को भाजपा सरकार व संघ 'लव-जिहाद' का नाम देने में लगी रहे। स्त्री विरोधी अपराधों पर लगाम लगाने के बजाय भाजपा सरकार और गोदी मीडिया एड़ी से चोटी तक का जोर लगाकर इस मसले का धार्मिक रंग देने की कोशिश कर रही थी। भाजपा नेता कपिल मिश्रा बयान ने बयान दिया कि हिन्दू लड़की के साथ यह घटना घटी है। भाजपा-संघ और गोदी मीडिया द्वारा प्रचार किया जा रहा था कि साहिल एक मुसलमान है, इसलिए उसने साक्षी की हत्या की और इस प्रचार के पीछे इनका मक़सद था इलाक़े में साम्प्रदायिक तनाव भड़काना और हिन्दू-मुस्लिम के बीच झगड़े करवाना, जैसा कि इन्होंने उत्तराखण्ड के पुरोला में किया और हिमाचल प्रदेश व देश के अन्य इलाकों में करने की कोशिश कर रहे हैं। 'लव जिहाद' के हल्ले का एक मक़सद यह भी है हममें बेबुनियाद भय पैदा किया जाये कि "मुसलमान आपकी औरतों को ले जायेंगे या मार देंगे!" अब ज़रा सोचिए कि भाजपा के कई शीर्ष नेताओं या उनके बेटे-बेटियों, भतीजा-भतीजियों ने मुसलमान पुरुष या स्त्री से शादियाँ की हैं, तो फिर ये हमें 'लव जिहाद' के नाम पर क्यों लड़वा रहे हैं? आइये कुछ तथ्यों पर निगाह डालें।

भाजपा के मुसलमान नेता शाहनवाज़ हुसैन की शादी एक हिन्दू स्त्री रेणु शर्मा से 1994 में हुई थी। इनके बीच प्रेम विवाह हुआ था। भाजपा के मुसलमान नेता मुख़्तार अब्बास नक़वी ने भी एक हिन्दू औरत सीमा से 1983 में शादी की थी। यह भी प्रेम विवाह था। भाजपा के मुखर नेता सुब्रमन्यम स्वामी की हिन्दू बेटी सुहासिनी ने एक मुसलमान आदमी नदीम हैदर से शादी की। क्या यह 'लव जिहाद' की परिभाषा में नहीं आयेगा? आज हमें समझने की ज़रूरत है कि स्त्री विरोधी घटनाएँ धर्म को देखकर नहीं होती बल्कि आज हर धर्म की महिलाएँ इसका शिकार हैं। वास्तव में, 'लव जिहाद' कोई मसला है ही नहीं। 'लव जिहाद' तो बहाना है, जनता ही निशाना है। चूँकि भाजपा की मोदी सरकार जनता को रोज़गार नहीं दे सकती, महँगाई से छुटकारा नहीं दे सकती, खुले तौर पर अडानी-अम्बानी के तलवे चाटने में लगी है, और सिर से पाँव तक भ्रष्टाचार में लिप्त है, तो वह असली मसलों पर बात कर ही नहीं सकती, जो आपकी और हमारी ज़िन्दगी को प्रभावित करते हैं। अगर 'लव जिहाद' वाकई कोई मसला होता तो हाफपैण्टिये लम्पट गिरोह सबसे पहले शाहनवाज़ हुसैन, मुख्तार अब्बास नक़वी, सिकन्दर बख़्त, सुब्रमन्यम स्वामी व सुहासिनी हैदर के घर हमला करते, इनके पते तो इन दंगाइयों के पास हैं ही; क्योंकि उन्हीं की पार्टी से तो हैं ये लोग।

अम्बेडकरनगर के ग्रामीण इलाक़ों में बदहाल चिकित्सा व्यवस्था

● मित्रसेन

कहने को तो भारतीय संविधान का अनुच्छेद-21 जीवन का अधिकार देता है। लेकिन संविधान की ज़्यादातर बातों की तरह ये भी बस दिखावटी बातें ही हैं। असलियत तो कुछ और ही है। आज की मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था में अगर आम लोग किसी बीमारी के चंगुल में फँस जायें तो बदहाल चिकित्सा व्यवस्था उन्हें मौत के मुँह में पहुँचाकर ही दम लेने वाली है। वैसे तो यह सच्चाई पूरे देश की है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में हालात और भी भयंकर हैं।

सरकार की ओर से जारी ग्रामीण स्वास्थ्य सांख्यिकी 2021-22 की रिपोर्ट के अनुसार देश के ग्रामीण क्षेत्रों में सर्जन डॉक्टरों की लगभग 83% ,बालरोग चिकित्सकों की 81.6%, फ़िजीशियन की 79.1% ,स्त्री रोग एवं प्रसूति रोग विशेषज्ञों की 72.2% कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थिति का हाल बताने के लिए ये आँकड़े काफ़ी हैं – 3900 मरीजों पर एक बेड है, 26000 ग्रामीण आबादी पर एक चिकित्सक की तैनाती है, जबकि डब्ल्यूएचओ (विश्व स्वास्थ्य संगठन) का कहना है कि 1000 लोगों पर एक डॉक्टर अवश्य होना चाहिए और काग़ज़ी तौर पर भारत सरकार इससे सहमत है।

क्या देश में डॉक्टरों की कमी है? नहीं। क्या अस्पताल के भवन, बेड आदि बनाने वाले कामगारों की कमी है? नहीं। वे तो रोज़गार की तलाश में सड़कों पर चप्पलें फटका रहे हैं। क्या मेडिकल स्टाफ़ के लिए नर्सों और वॉर्ड बॉयों की कमी है? नहीं, वे भी बेरोज़गारी की मार खा रहे हैं। वजह यह है कि मौजूदा व्यवस्था में कोई भी सरकार और ख़ास तौर पर फ़ासीवादी भाजपा सरकार को आम मेहनतकश जनता के स्वास्थ्य या जीवन से कोई लेना-देना नहीं है।

सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों को प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के बुनियादी ढाँचे के तौर पर देखा जाता है, जो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों (PHCs) के लिए रेफ़रल केन्द्र के तौर पर काम करते हैं। इनमें एक ऑपरेशन थियेटर, एक्स-रे, लेबर रूम और लैब की सुविधाओं के साथ 30 इनडोर बेड की सुविधा होती है। न्यूनतम मानदण्डों के अनुसार एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र पर 4 चिकित्सक – विशेषज्ञ/सर्जन चिकित्सक, प्रसूति रोग विशेषज्ञ ,स्त्री रोग विशेषज्ञ और बाल रोग विशेषज्ञ होने चाहिए। ग्रामीण स्वास्थ्य सांख्यिकी 2021-22 की रिपोर्ट से पता चलता है कि देश में कुल 6064 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र हैं। इसमें 5480 ग्रामीण क्षेत्रों में और 584 शहरी क्षेत्रों में हैं। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में विशेषज्ञ चिकित्सकों की संख्या 2005 में 3550 थी जो बढ़कर 2022 में 4485 हो गई है। यह आबादी में बढ़ोत्तरी की अपेक्षा कतई अपर्याप्त वृद्धि है। अभी भी लगभग 80% विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 2023 में 20 हज़ार करोड़ रुपये से अधिक के बजट का प्रावधान किया गया है। सरकार का दावा है कि इसमें आधारभूत संरचनाओं के विकास और ग्रामीण स्वास्थ्य पर ज़ोर रहेगा। 20,162.39 करोड़ के इस बजट में से चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के लिए 17,325 करोड़ एवं चिकित्सा शिक्षा के लिए 2,837.39 करोड़ की धनराशि का प्रावधान किया गया है। ग्रामीण स्वास्थ्य के लिए 12,631 करोड़ एवं आधारभूत संरचनाओं के लिए 1,547 करोड़ देने की बात कही गयी है। लेकिन सरकार द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार की ढपोरशंखी घोषणाओं के बावजूद ज़मीनी हक़ीक़त स्वास्थ्य व्यवस्था की कलई खोल देने वाली है। स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली की वजह से देश की एक बड़ी आबादी को काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अधिकतर सरकारी अस्पतालों में चिकित्सकों के पद खाली हैं। जाँच उपकरणों की बेहतर व्यवस्था नहीं है। जहाँ पर उपकरण हैं, वहाँ भीड़ बहुत अधिक होती है। सरकारी अस्पतालों की हालत ख़स्ता होने के कारण लोगों को मजबूरन निजी अस्पतालों का सहारा लेना पड़ता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के अम्बेडकरनगर ज़िले में स्वास्थ्य सेवाओं की तस्वीर देश की आम तस्वीर से अलग नहीं है। यहाँ ज़िला अस्पताल के अलावा एक मेडिकल कॉलेज, 11 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, 33 स्वास्थ्य उपकेन्द्र सहित 233 वेलनेस सेण्टर मौजूद हैं। ज़िले के आलापुर तहसील क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली की वजह से लोगों को काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। सरकारी अस्पतालों की बदहाली और प्राइवेट अस्पतालों की लूट लोगों की ज़िन्दगियाँ लील रही है।

इस इलाक़े की अधिकांश आबादी स्थानीय और बाहर जाकर काम करने वाले मज़दूरों की है। महँगाई की वजह से दवा-इलाज कराना तो दूर लोगों को दो-जून की रोटी भी मिल पाना मुश्किल है। बहुत से लोग ऐसे हैं जो औद्योगिक शहरों में कुछ महीने काम करके गम्भीर बीमारियों का शिकार बन गये हैं और अब वो इलाज के लिए दर-दर की ठोकरे खा रहे हैं। वास्तव में लूट और मुनाफ़े पर टिकी यह व्यवस्था मेहनतकश आबादी की ज़िन्दगियों को मुनाफ़े की हवस में ऐसे ही लीलती रहती है। पहले तो यह व्यवस्था मेहनतकशों की हड्डी तक निचोड़कर अपने मुनाफ़े की तिजोरी में क़ैद कर लेती है। उसके बाद उन्हें सड़कों पर दर-दर भटकने, मरने के लिए छोड़ देती है। सरकारी अस्पतालों की बदहाली की वजह से आम लोग या तो मेडिकल स्टोर, झोलाछाप डॉक्टरों से इलाज कराने को विवश होते हैं या फिर झाड़-फूँक का सहारा लेते हैं। नतीजा यह होता है कि छोटी-छोटी बीमारियाँ भी बड़ी बीमारी बन जाती हैं और लोगों की ज़िन्दगी पर भारी पड़ती हैं।

प्राइवेट अस्पतालों का पूरा कारोबार ही सरकारी अस्पतालों की बर्बादी-बदहाली पर फलता-फूलता है जहाँ पर पैसे के बिना दवा-इलाज के बारे में सोचना भी गुनाह है। आये दिन अस्पतालों में पैसा न दे पाने की वजह से लाश को रोक लेने, इलाज रोक देने, गहना-गिरवी रखने आदि की घटनाएँ सामने आती रहती हैं। इनकी लूट का एक हिस्सा चन्दे के रूप में नेताओं, मन्त्रियों की जेबों में भी जाता है, और उनकी शह पर लूट का यह कारोबार बेरोकटोक चलता रहता है। इलाके में टीबी, कैंसर, शुगर, किडनी, मानसिक रोग ,साँप काटने, पेट दर्द और बुख़ार तक से आये दिन बच्चों, महिलाओं, नौजवानों, नागरिकों की मौतें होती रहती हैं।

अम्बेडकरनगर की आलापुर तहसील में 472 गाँवों की लगभग 5 लाख आबादी पर 2 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र रामनगर और जहाँगीरगंज में बनाये गये हैं। 6 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र कमालपुर पिकार, कम्हरियाघाट, नरियांव, लखनीपट्टी, मकरही तथा माडरमऊ में हैं। इसके अलावा इस तहसील क्षेत्र में कई आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक अस्पताल भी हैं, लेकिन ज़्यादातर जगहों पर पूरा केन्द्र ही एक या दो स्टाफ़ के भरोसे चल रहा है। जिन जगहों पर एक्सरे, जाँच आदि के उपकरण हैं भी, वहाँ स्टाफ़ ही मौजूद नहीं रहता है। कहीं ये हालत है कि स्टाफ़ मौजूद है तो अन्य सुविधाएँ केवल काग़ज पर ही हैं। यहाँ से वहाँ मरीज़ को रेफ़र करने में ही बहुत से लोगों की मौत हो जाती है। कहीं पर लैब टेक्नीशियन का काम फ़ार्मासिस्ट करता है तो कहीं सीटी स्कैन नहीं होता क्योंकि कोई ऑपरेट करने वाला नहीं है। कभी स्ट्रेचर नहीं मिलता है तो कहीं डॉक्टर ही नदारद रहते हैं। कभी बिजली न आने से मशीन बन्द रहती है तो कहीं इमरजेंसी वार्ड पर ताला जड़ा रहता है। ये स्थिति केवल आलापुर तहसील की नहीं बल्कि लगभग पूरे ज़िले की है। बाढ़ प्रभावित इलाकों अराजी देवारा, माझा कम्हरिया, सिद्धनाथ गाँव के पास ही ब्रह्मचारी बाबा आयुर्वेदिक अस्पताल है लेकिन यहाँ भी लोगों को बेहतर सुविधा नहीं मिलती हैं क्योंकि यहाँ पर न केवल पर्याप्त संसाधनों का अभाव है बल्कि चिकित्सकों के बहुत से पद खाली पड़े हैं। वैसे भी आयुर्वेदिक अस्पताल में हर प्रकार की स्वास्थ्य समस्या के लिए इलाज की व्यवस्था हो ही नहीं सकती है।

कई अस्पतालों में वार्डबॉय के भरोसे लोगों का इलाज चल रहा है। इलाके में जो निजी अस्पताल हैं, वहाँ फ़ीस और दवा-इलाज इतना महँगा है कि लोग पैसे के अभाव में अपना इलाज नहीं करवा पाते हैं और घुट-घुट कर मर जाते हैं। लोगों को दवा-इलाज के लिए अपनी ज़मीन, जानवर, गहने या ज़रूरी सामान बेचना पड़ता है। कई लोगों का गाँवों से चन्दा जुटाकर इलाज होता है। आसपास के बहुत सारे परिवार क़र्ज़ में डूबे हुए हैं। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यकर्ताओं ने 10 गाँवों में सर्वे किया और पाया कि हर गाँव में औसतन सात से दस लोग गम्भीर बीमारी का शिकार हैं और पैसे के अभाव में उनका इलाज़ नहीं हो पा रहा है। रामपुर गाँव के निवासी महेन्द्र कैंसर से पीड़ित हैं। पैसा न होने के कारण वह इलाज़ नहीं करा पा रहे हैं और दर्द के इंजेक्शन के सहारे अपनी ज़िन्दगी को ढो रहे हैं। इसी तरह राजेसुल्तानपुर के पास रुकुमलपुर गाँव में लहुरी नाम के एक व्यक्ति ने अपने बेटे के इलाज के लिए 50,000 रुपये सूदख़ोर से लिए थे। पैसे न चुका पाने के कारण वह पिछले पाँच वर्षों से लगभग बन्धक की स्थिति में उसी सूदख़ोर के यहाँ काम कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि उनकी ज़िन्दगी जेल से भी बदतर हो चुकी है।

पूरे क्षेत्र में महिलाओं और बच्चों के लिए अलग से कोई भी अस्पताल नहीं है। बहुत सारी महिलाओं की मृत्यु प्रसव के दौरान हो जाती है। 70% महिलाएँ खून की कमी की वजह से एनीमिया की शिकार हैं। कई लोगों की मृत्यु ज़हरीले जीव-जन्तुओं के काटने से हो जाती है। वर्ष 2019 से अब तक इसी तहसील में हज़ारों लोगों की मौत हो चुकी है और कई लोग ज़िन्दगी के लिए जूझ रहे हैं। कई लोगों का आयुष्मान भारत योजना का कार्ड भी बना हुआ है, लेकिन उनका इलाज़ भी नहीं हो पा रहा है। जहाँगीरगंज के पास स्थित नरियाँव गाँव के 25 वर्षीय युवक लक्ष्मण एक्सीडेंट में बुरी तरह घायल हो गये थे। परिवार में मौजूद थोड़े-बहुत जेवरात, ज़मीन, जानवर सब कुछ बेचकर लगभग ढाई लाख रुपये ख़र्च करने पड़े क्योंकि लक्ष्मण के आयुष्मान कार्ड पर अस्पताल ने इलाज नहीं किया। गाँव के लोगों ने इलाज के लिए चन्दा भी इकट्ठा किया। फ़िर भी अन्ततः लक्ष्मण को नहीं बचाया जा सका। ऐसी ही कहानियाँ इलाक़े के हर गाँव में हैं।

पूरे इलाक़े में पर्यावरण प्रदूषण की वजह से लोगों में बीमारियों की संख्या काफ़ी बढ़ी है। पूरे क्षेत्र में कैंसर, टीबी, डायबिटीज़, ब्लड प्रेशर, किडनी, श्वास रोग, लकवा, मानसिक बीमारी, बुख़ार आदि के रोगियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली का यह आलम है कि जिले के जहाँगीरगंज ब्लॉक के तिहाईतपुर गाँव में वर्षों पहले अस्पताल निर्माण का काम शुरू हुआ था। इलाके में लोगों को पास ही दवा-इलाज की सुविधा मिल जाने की उम्मीद थी। लेकिन उनकी सभी उम्मीदों पर पानी फिर चुका है क्योंकि अस्पताल का पूरा ढाँचा तो तैयार हो चुका है लेकिन उसको उसी रूप में छोड़ दिया गया है। ना ही उसकी सही से देख-रेख हो रही है और ना ही अस्पताल पर डॉक्टरों की नियुक्ति की जा सकी है। जनता की ख़ून-पसीने की कमाई से बना यह पूरा ढाँचा तबाह हो रहा है। इसके परिसर के अन्दर बड़े पैमाने पर घास-फूस है, गन्दगी का अम्बार लगा हुआ है। बहुमूल्य सामान बर्बाद हो रहा है।

लेकिन देश के नेताओं-नौकरशाहों को इस तबाही-बर्बादी से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। चिकित्सा की यह बदहाली उनके लिए चुनावी मुद्दा भी नहीं है क्योंकि बड़े-बड़े निजी अस्पतालों के मालिकान ख़ुद ही या तो ऐसी पार्टियों के नेता हैं, या इन पार्टियों को चन्दा देते हैं। **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी** के वॉलण्टियर इन माँगों पर स्थानीय लोगों को संगठित कर इस बदहाली के ख़िलाफ़ एक बड़े जनान्दोलन की तैयारी में जुटे हुए हैं।

1. इलाके में एक मिनी पीजीआई अस्पताल खोला जाये।
2. चिकित्सकों के रिक्त पदों को तत्काल भरा जाये।
3. संसाधनों (एक्स-रे, अल्ट्रासाउण्ड, इसीजी, सिटी स्कैन, खून की जाँच आदि) की व्यवस्था दुरुस्त की जाये तथा जाँच मशीनों का नियमित संचालन सुनिश्चित किया जाये।
4. जानवरों एवं जहरीले जीव-जन्तुओं के काटने पर हर अस्पताल में टीके उपलब्ध कराये जायें।
5. अस्पतालों में साफ़-सफाई की बेहतर व्यवस्था की जाये।
6. अस्पताल में आवास की और शौचालय की व्यवस्था और बेहतर की जाये।
7. महिलाओं एवं बच्चों के लिए अलग से अस्पताल खोले जायें।
8. सभी व्यक्तियों हेतु निःशुल्क एवं गुणवत्तापूर्ण की चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करायी जाये।
9. सभी निजी अस्पतालों का राष्ट्रीकरण किया जाये।
10. प्रत्येक 1 लाख की आबादी पर एक बड़ा अस्पताल खोला जाये और पर्याप्त संख्या में चिकित्सकों की नियुक्ति की जाये।

आम जनता की बदहाली और दमन के बीच जी-20 का हो-हल्ला

● आशीष

इसी वर्ष 9-10 सितम्बर को दिल्ली के प्रगति मैदान में जी-20 का 18वाँ शिखर सम्मेलन हो रहा है। जी-20 यानी बीस का समूह। इस समूह में भारत, अर्जेण्टीना, ऑस्ट्रेलिया, ब्राज़ील, कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, इण्डोनेशिया, इटली, जापान, मेक्सिको, रूस, सउदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण कोरिया, तुर्की, ब्रिटेन, अमेरिका और यूरोपीय यूनियन शामिल हैं। इसके अलावा जी-20 सम्मेलन में हर वर्ष कई और देश अतिथि देश के रूप में भाग लेते हैं। 1999 में यह समूह अस्तित्व में आया था।

इस समूह के प्रत्येक सदस्य देश के शासक वर्ग यानी कि पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली सरकार के प्रमुख अपने-अपने देश के शासक वर्ग के हितों के हिसाब से जी-20 के मंच का इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार के मंचों का इस्तेमाल विभिन्न देशों के पूँजीपति वर्ग श्रमशक्ति की लूट की होड़, सस्ते कच्चे मालों पर कब्ज़े तथा व्यापारिक सौदेबाजी में अधिक से अधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिए करते हैं। भारत में मज़दूर वर्ग के शोषण का बड़ा हिस्सा यहाँ का पूँजीपति वर्ग लेता है, छोटा हिस्सा दूसरे देश के पूँजीपति वर्ग प्राप्त करते हैं, विशेष तौर पर, उन्नत साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपति वर्ग। मज़दूर वर्ग की श्रमशक्ति के लूट के एक छोटे से हिस्से को देकर बदले में यहाँ का पूँजीपति वर्ग बाहर से पूँजी और उन्नत तकनोलॉजी की मदद लेता है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मज़दूर वर्ग के शोषण एक छोटा हिस्सा पाने के बदले भारतीय पूँजीपति वर्ग बाहर के लुटेरों को भारत में लूट का अवसर देता है, हालाँकि भारत के भीतर मुनाफ़े का बड़ा हिस्सा वह स्वयं अपने नियन्त्रण में रखता है। जी-20 समूह के सभी देशों के वित्त मन्त्री और केन्द्रीय बैंकों के गवर्नर सामंजस्य बैठाकर काम करते हैं, हर किसी की कोशिश यही होती है कि अपने देश के पूँजीपतियों को अधिक से अधिक लाभ दिला सके। जी-20 के सम्मेलन में तमाम विकसित साम्राज्यवादी देशों और विकासशील पूँजीवादी देशों के शासक वर्गों के बीच इन्हीं प्रश्नों को लेकर सौदेबाज़ी होती है।

भारत में जी-20 के शिखर सम्मेलन को लेकर गोदी मीडिया द्वारा किये जा रहे प्रचार की हक़ीक़त को समझना ज़रूरी है। गोदी मीडिया इस सम्मेलन को देश के लिए गौरव का अवसर बता रहा है। मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता को लूटने-खसोटने वाले शासक वर्ग के प्रतिनिधियों के सम्मेलन तो सबके लिए गौरव का अवसर नहीं हो सकता। अगर यह सम्मेलन भारत में हो रहा है तो भारत के पूँजीपतियों के लिए यह गौरव का उत्सव अवश्य है। लेकिन मज़दूर और मेहनतकश आपसी कुत्ताघसीटी और सौदेबाज़ी के लिए हो रहे लुटेरों के इस मजमे पर किसलिए गर्व महसूस करे?

मीडिया, सोशल मीडिया और बड़े-बड़े होर्डिंग के माध्यम से इस बात का प्रचार-प्रसार भी जोरों पर है कि भारत में यह सम्मेलन होना मोदी सरकार की महान कामयाबी है, जो कि वास्तव में बहुत ही हास्यास्पद बात है। हर बार के सम्मेलन में किसी एक देश को इसकी अध्यक्षता दी जाती है और अगला सम्मेलन अध्यक्ष देश के मेज़बानी में उसी देश में होता है। यह मौका चक्रीय क्रम से इस समूह में शामिल सब देशों को ही मिलता है। अबकी बार भारत की बारी आयी है, तो यह कोई महान उपलब्धि नहीं है। भारत में नरेन्द्र मोदी की जगह कोई चमगादड़ दास या कद्दू प्रसाद नाम का व्यक्ति भी सरकार का प्रमुख होता तो भी यह सम्मेलन भारत में ही होता। इस शिखर सम्मेलन का भारत में आयोजन होने में मोदी सरकार का कोई योगदान नहीं है, क्योंकि अगला सम्मेलन कहाँ होगा रोटेशन अथवा क्रमिक तौर पर तय होता है। पिछले वर्ष यह सम्मेलन 15-16 नवम्बर 2022 को इण्डोनेशिया के बाली में हुआ था। अगले वर्ष 2024 में यह सम्मेलन ब्राज़ील की अध्यक्षता में होगा और यदि ब्राज़ील की सरकार इसे अपनी महान उपलब्धि बताना शुरू करें तो यह भी झूठ और कॉमेडी के अलावा कुछ नहीं होगा। 2022 के सम्मेलन में 1 दिसम्बर 2022 से 30 नवम्बर 2023 तक के लिए भारत को जी-20 की अध्यक्षता दी गयी थी। भारत की अध्यक्षता के अवधि में देश के 50 से अधिक शहरों में लगभग 200 बैठकें निर्धारित की गयीं जिनमें से कई बैठकें हो चुकी है और शेष बैठकें शिखर सम्मेलन तक हो जायेंगी।

विभिन्न राज्यों के शहरों में बैठक और राजधानी दिल्ली में शिखर सम्मेलन की तैयारियों में मोदी सरकार ने खज़ाना ही खोल दिया है। जनता से वसूले गये टैक्स के पैसों को जमकर ख़र्च किया जा रहा है। सरकार की वाहवाही करते हुए विज्ञापन निकाले जा रहे हैं। दिल्ली में तो जी-20 के थीम पर एक नये पार्क का निर्माण किया जा रहा है। इसके साथ ही केन्द्र सरकार जी-20 के नाम पर ग़रीबों के ख़िलाफ़ खुलकर काम कर रही है। मसलन कड़कड़ाती सर्दी, चिलचिलाती धूप व गर्मी और बेमौसम बारिश के दिन भी कई स्थानों पर झुग्गी बस्तियों को तोड़ दिया गया। कई स्थानों पर अतिक्रमण हटाने के नाम पर सड़क किनारे रेहड़ी पटरी लगाकर या छोटी दुकान चलाने वाले मेहनतकश लोगों का माल ज़ब्त कर लिया गया तथा उससे वह जगह छीन ली गयी। मुम्बई में जब जी-20 के प्रतिनिधि बैठक में भाग लेने पहुँचे तो वहाँ के झुग्गियों को छुपाने के लिए माहिम, वर्ली, बान्द्रा से लेकर बोरिवली तक इलाक़े को बड़े बड़े पर्दों से ढँक दिया गया। स्थानीय लोगों ने मीडिया को बताया कि यहाँ जितनी साफ-सफाई दिख रही है ऐसा उन्होंने पहले कभी नहीं देखा।

आगरा में ताजमहल के आसपास आवारा कुत्तों और बन्दरों को पकड़-पकड़कर वहाँ की व्यवस्था को चाक-चौबन्द किया गया, क्या यह काम सरकार पहले नहीं करवा सकती थी? वैसे सभी सनातनी हिन्दुओं को सोचना चाहिए कि मोदी सरकार ने अपने विदेशी यवन मित्रों की आवभगत के लिए हनुमान के नुमाइन्दे बन्दरों के साथ ऐसा बुरा बर्ताव क्यों किया!? राँची में अतिक्रमण हटाने के नाम पर सड़क पर दुकान लगाने वाले लगभग डेढ़ सौ लोगों के सामान ज़ब्त कर लिये गये और उन्हें उस जगह से बेदखल कर दिया गया। देश की राजधानी दिल्ली में चमचमाती लाईट, अद्भुत चित्रकला और फूलों की सजावट के पीछे मजदूरों के आँसू और सिसकियाँ हैं, झूठे जश्न के शोर में जिसे दबाया जा रहा है। अपनी छवि चमकाने की सरकार की कोशिश ने लाखों ग़रीबों को बेघर कर दिया है। विदेशी मेहमानों के रास्ते में आने वाली झुग्गी बस्तियाँ ज़मींदोज़ कर दी गयी हैं। इनमें रहने वाले लोगों के पास न तो कोई दूसरा ठिकाना है और ना ही सरकार के पास उन्हें फिर से बसाने के लिए कोई योजना है। दिल्ली में 260 से अधिक साइटों को अतिक्रमण के रूप में चिन्हित किया गया है। जी-20 पार्क बनाने के चक्कर में महरौली में एक दर्जन मकानों को तोड़ा गया। सराय काले खाँ बस टर्मिनल के पास बने रैन बसेरा को बुलडोजर से ध्वस्त कर दिया। 2014 से मौजूद इस रैन बसेरा में बिहार यूपी से आने वाले मज़दूर रुकते थे। तुगलकाबाद, मयूर विहार, धौला कुआँ, कश्मीरी गेट और सुभाष कैम्प के पास की झुग्गियों के ऊपर भी ख़तरे की घण्टी बजी, इनमें से कई जगहों पर तोड़फोड़ की कार्रवाई पूरी हो चुकी है। दिल्ली के प्रगति मैदान में जहाँ शिखर सम्मेलन होना है वहीं पर नज़दीक में बसी जनता कॉलोनी नामक झुग्गी बस्ती को भी तोड़ने का नोटिस निकाला गया। जनता कॉलोनी के लोग यह माँग कर रहे थे कि हमारे ऊपर भी पर्दा डाल दो छुपा लो लेकिन हमें बेघर मत करो। प्रशासन के तरफ़ से कोई मदद की उम्मीद नहीं होने पर लोगों ने न्यायालय का रुख किया। न्यायालय में ज़मीन के मालिकाने में असमंजस को लेकर बुलडोजर से जनता कॉलोनी को ध्वस्त करने की प्रक्रिया पर रोक लगा दी, इसी कारण यह कॉलोनी बची हुई है। जहाँ-जहाँ भी तोड़फोड़ की कार्रवाई हुई है उसमें लगभग सभी मज़दूर बस्तियाँ हैं। अतिक्रमण हटाने के नाम पर सबसे ज्यादा उन लोगों पर कार्रवाई हुई जो अपने गाँव से उजड़कर शहर में रोज़ी-रोटी कमाने आये थे।

जी-20 शिखर सम्मेलन की आड़ में मोदी सरकार सस्ती लोकप्रियता हासिल करने की कोशिश क्यों कर रही है? इसका जवाब पूरी तरह तरह स्पष्ट है। अगले वर्ष 2024 में लोकसभा के चुनाव होने हैं और केन्द्र सरकार के जनता विरोधी रवैये के कारण नरेन्द्र मोदी की लोकप्रियता लगातार गिरती जा रही है। मोदी सरकार 2014 में "अच्छे दिन आने वाले हैं" की बात करते हुए आयी थी लेकिन अच्छे दिन मालिकों-पूँजीपतियों-अमीरों के आये, मज़दूरों के बुरे दिन चल रहे थे वह और बुरे हो गये। "बहुत हुई महँगाई की मार अबकी बार मोदी सरकार" जैसे जुमले का भी वही हाल हुआ। ग़रीबों की कमाई नहीं बढ़ी लेकिन महँगाई आसमान पर है। गैस सिलेण्डर, पेट्रोल-डीजल, राशन, फल, टमाटर एवं अन्य सब्जियों के दाम में आग लगी हुई है। हर साल 2 करोड़ रोजगार देने की भी असलियत यही है। "भ्रष्टाचार पर वार" और "काला धन वापस लायेंगे" के दावों का शोर भी शान्त पड़ चुका है। हिण्डनबर्ग रिपोर्ट में अदाणी के भ्रष्टाचार की बात उजागर हो चुकी है। भाजपा जिन विपक्षी नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाती है वही नेता जब भाजपा में शामिल हो जाते हैं तो उनके सारे पाप धुल जाते हैं। इन सारी समस्याओं का सबसे बड़ा भुक्तभोगी मज़दूर वर्ग में है। इसीलिए मज़दूर वर्ग के बीच और जनता के अन्य हिस्सों के बीच भी अपने 9 साल के कार्यकाल के बाद मोदी सरकार अलोकप्रिय होती जा रही है। कई राज्यों के विधानसभा चुनाव में मोदी के ताबड़तोड़ चुनाव प्रचार के बाद भी वहाँ के परिणाम मोदी की "विराट" छवि के ह्रास का संकेत है। ऐसे में साम्प्रदायिक उन्माद तथा अन्धराष्ट्रवादी जुनून पैदा करके ही भाजपा की हार को टालने के मक़सद से भाजपा-आरएसएस परिवार और इसके आनुषंगिक संगठन तथा गोदी मीडिया पूरा दमखम लगा रहे हैं। जी-20 समूह का शिखर सम्मेलन भारत में हो रहा है जो देश के लिए गौरव का क्षण है – इस प्रकार की बातें करना भी अन्धराष्ट्रवादी जुनून पैदा करने के परियोजना का ही एक हिस्सा है। मालिकों के वर्ग का वफ़ादार और जनता का और ख़ासकर मज़दूर वर्ग का सबसे बड़ा दुश्मन फ़ासिस्ट मोदी सरकार के खेल की असलियत को समझना होगा, अगर नहीं समझे तो धोखा मिलना निश्चित है।

रूस-यूक्रेन युद्ध: तबाही और बर्बादी के 500 दिन

(पेज 11 से आगे)

युद्ध की वजह से सैन्य हथियारों के उत्पादन के पुराने कीर्तिमान तोड़ रही हैं और इस प्रक्रिया में दौरान अभूतपूर्व मुनाफ़ा कमा रही है। इन कम्पनियों के शेयर्स की क़ीमतों में भी ज़बर्दस्त उछाल देखने को आ रहा है।

इसके अलावा तेल व गैस कम्पनियों ने भी युद्ध की वजह से दुनिया भर में तेल व गैस की कम आपूर्ति और बढ़ती माँग और उससे जनित महँगी क़ीमतों का लाभ उठाते हुए जमकर मुनाफ़ा कूटा है। यूक्रेन युद्ध के दौरान एक्सॉन मोबिल, शेल, बीपी और शेवरॉन जैसी कम्पनियों के मुनाफ़े में ज़बर्दस्त बढ़ोतरी हुई है। यानी लोगों की तबाही और बर्बादी इन कम्पनियों के लिए मुनाफ़ा कमाने का अवसर हैं और वे इस अवसर का जमकर फ़ायदा उठा रही हैं।

यूक्रेन युद्ध की वजह से दुनिया भर में खाद्यान्न व खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में भी ज़बर्दस्त उछाल हुआ है। ऐसे में विशालकाय खाद्य कम्पनियों के अलावा खाद्य पदार्थों की क़ीमतों को लेकर सट्टेबाज़ी कर रहे हेज फ़ण्ड्स भी जमकर मुनाफ़ा कूट रहे हैं। एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक़ यूक्रेन युद्ध की वजह से विश्व के स्तर पर खाद्य पदार्थों की बढ़ी क़ीमतों को लेकर सट्टेबाज़ी करने वाली दुनिया के 10 बड़े हेज फ़ण्ड्स ने अब तक 2 अरब डॉलर से ज़्यादा का मुनाफ़ा कमाया है। ग़ौरतलब है कि आपूर्ति में कमी के अतिरिक्त इन हेज फ़ण्ड्स की सट्टेबाज़ी भी खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में आयी उछाल के मुख्य कारकों में से एक है।

इस प्रकार पूँजीवाद के अन्तर्गत पनपने वाली मुनाफ़े की हवस एक ओर युद्ध में लोगों के जान-माल का नुक़सान पहुँचा रही है और दूसरी तरफ़ वह मुनाफ़ाख़ोरों और सट्टेबाज़ों को अकूत मुनाफ़ा कमाने के खुले अवसर प्रदान कर रही है। यह स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद के पास मनुष्यता को देने के लिए तबाही, बर्बादी, मुनाफ़ाख़ोरी, कफ़नख़सोटी के अलावा कुछ नहीं है। मनुष्यता को इन साम्राज्यवादी युद्धों से निजात केवल समाजवाद ही दिला सकता है।

उत्तर प्रदेश, बिहार और अन्य जगहों में भीषण गर्मी और लू से हुई मौतें : ये महज़ प्राकृतिक आपदा नहीं पूँजीवाद की देन हैं!

● सार्थक

पिछले महीने उत्तर भारत के मैदानी इलाक़े, ख़ास तौर से उत्तर प्रदेश और बिहार, भयंकर गर्मी और लू की चपेट में रहे। पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो ज़िलों बलिया और देवरिया को लू का सबसे ज़्यादा प्रकोप झेलना पड़ा। कई स्थानीय अख़बारों के अनुसार जून 11 से 23 के बीच लू के कारण इन दोनों जगहों में 100 से ज़्यादा लोग मरे हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि इनमें से अधिकांश आम मेहनतकश ग़रीब लोग थे। बलिया जिला अस्पताल के स्वास्थ्य अधिकारी के प्रारम्भिक रिपोर्ट के अनुसार जून 14 से 16 के बीच लू के कारण 68 लोगों की मौत हुई हैं। बिहार में इस दौरान लू से 50 से अधिक लोगों की मौत हो गयी। इससे पहले, अप्रैल में नवी मुम्बई में भाजपा की एक रैली के दौरान भयंकर गर्मी और उमस से 13 लोगों की जान चली गयी थी। यह याद रखना ज़रूरी है कि ये आँकड़े केवल सरकारी अस्पताल में हुई मौतों के हैं; इनमें निजी अस्पतालों और घरों में हुई मौतें शामिल नहीं हैं। अक्सर पोस्टमार्टम न होने के कारण भी लू से हुई मौत की रिपोर्टिंग नहीं होती है।

ख़ैर, सरकार की लापरवाही और नाकामी से हो रही इन मौतों की सच्चाई को छिपाने के लिए योगी सरकार ने आनन-फानन में बलिया जिला स्वास्थ्य अधिकारी का तबादला कर विशेषज्ञों के टीम का गठन कर दिया। इस टीम ने जल्द ही यह घोषणा कर दी कि बलिया और देवरिया में हो रही अचानक मौतों के लिए लू ज़िम्मेदार नहीं है। कई राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मौसम विज्ञान संस्थानों ने पहले ही उत्तर भारत में जून के महीने में भयंकर गर्मी और लू की चेतावनी दे दी थी। लेकिन इस स्थिति से बचने के लिए उत्तर प्रदेश के योगी सरकार ने कोई क़दम नहीं उठाये। एक-दो दिन में ही सरकारी अस्पताल ठसाठस भर गये। स्थानीय अख़बारों के अनुसार बलिया के ज़िला अस्पताल के कई वार्डों में पंखे और बेड तक की सुविधा नहीं थी और लू से पीड़ित मरीज़ ज़मीन पर लेटे-लेटे ही दम तोड रहे थे। यह है उत्तर प्रदेश के डबल इंजन की सरकार के सुशासन का परिचय। विशेषज्ञों की चेतावनी के बावजूद योगी सरकार द्वारा कोई सूचना, दफ़्तरों व कारखानों में छुट्टी या काम के घण्टे कम करने की सूचना या लू से बचने की आम सूचना नहीं जारी की गयी। अपने राज्य की जर्जर स्वास्थ्य व्यवस्था को जानते हुए भी ऐसा कोई क़दम नहीं उठाना आपराधिक है और लापरवाही के कारण हुई ये मौतें हत्या हैं।

देश में इस साल लू और भीषण गर्मी का दौर कोई अपरिहार्य या आकस्मिक प्राकृतिक परिघटना नहीं है। यह मुनाफ़े की हवस पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था-जनित जलवायु संकट की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस जलवायु संकट की जड़ में भूमण्डलीय ऊष्मीकरण ('ग्लोबल वार्मिंग') है। मुनाफ़ाखोरी के लिए तेज़ी से कटते जंगल और कार्बन डाइऑक्साइड जैसे ग्रीनहाउस गैसों का बेलगाम उत्सर्जन मुख्यतः ज़िम्मेदार हैं। 'वर्ल्ड वेदर एट्रिब्यूशन' द्वारा हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार जून 14-16 के बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में जो भयानक लू चली, उसके पैदा होने की सम्भावना जलवायु परिवर्तन के कारण दुगनी हो गयी थी। इस तरह ही भारत समेत दक्षिण और दक्षिण पूर्वी एशिया में अप्रैल में जो लू की स्थिति पैदा हुई थी उसकी सम्भावना भी जलवायु परिवर्तन के कारण 30 गुना तक बढ़ गयी थी। इस तरीके के भयंकर लू की स्थिति जो पहले सदी में औसतन एक बार आती थी, अब जलवायु परिवर्तन के कारण 5 साल में एक बार आ सकती है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार 2060 तक देश के ज़्यादातर हिस्सों में लू 12 से 18 दिनों से ज़्यादा समय तक चल सकती है।

गर्मी के मौसम में उत्तरी भारत में पश्चिम तथा मध्य एशिया से हवा चलती है। भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण ये दोनों भौगोलिक क्षेत्र तेज़ी से गर्म हो रहे हैं जिसके कारण यहाँ से ज़्यादा गर्म हवा अब भारत आ रही है। भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण अरब सागर भी बाकी महासागरों से ज़्यादा जल्दी गर्म हो रहा है। इसकी वजह से अरब सागर से चलने वाली हवा पहले की तुलना में ज़्यादा गर्म और अपने साथ ज़्यादा नमी लेकर आती है। महासागरीय तापमान बढ़ने के साथ उसके ऊपर चलने वाली हवा की आर्द्रता भी बढ़ जाती है। यह नम हवा उत्तरी भारत में अत्यधिक उमस की स्थिति पैदा करती है। हम जानते हैं कि अत्यधिक उमस गर्मी को ज़्यादा असहनीय, पीड़ादायी और प्राणघातक बना देती है। नमी वाली हवा शुष्क हवा के मुकाबले कम पसीना सोखती है। जब हवा हमारे त्वचा से पसीना सोखती है तो इससे शरीर का तापमान कम हो जाता है। लेकिन नमी बढ़ने के कारण हवा पसीना नहीं सोख पाती और इसकी वजह से प्राकृतिक तौर पर शरीर को ठण्डा रखने का तन्त्र काम करना बन्द कर देता है। इससे शरीर का आन्तरिक तापमान बढ़ने लगता है और अगर यह स्थिति कुछ घण्टों तक भी बनी रही तो इससे लू लग सकती है। उमस और गर्मी के संयुक्त प्रभाव को वैज्ञानिक शब्दावली में 'वेट बल्ब टेंपरेचर' कहते हैं। साधारण तापमान अगर 44 डिग्री भी हो तो यह इन्सानी शरीर के लिए उतना आत्मघाती नहीं है जितना वेट बल्ब टेंपरेचर का 34 डिग्री होना होता है। इसके अलावा, अराजक पूँजीवादी व्यवस्था के तहत होने वाले अनियोजित शहरी विकास के कारण हमारे शहरों का ढाँचा भी कुछ इस प्रकार बन गया है कि ज़्यादातर ऊष्मा इसके अन्दर ही क़ैद रह जाती है। वैज्ञानिक इन शहरी इलाकों को ताप द्वीप ('हीट आइलैंड') की संज्ञा देते हैं। इन ताप द्वीपों का औसत तापमान अपने आसपास के इलाक़ों की तुलना में ज़्यादा होता है। ऊँची इमारतें और अत्यधिक संकुलित रिहायशी इलाक़ों के कारण हवा का प्राकृतिक प्रवाह भी बाधित होता है जिससे उमस का प्रभाव बढ़ जाता है।

राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण के अनुसार भीषण गर्मी और लू से पिछले 32 सालों में भारत में 26,000 से ज़्यादा लोगों की मौत हो चुकी है। सिर्फ़ भारत या दक्षिण एशिया ही नहीं, यहाँ तक कि यूरोप भी इससे अछूता नहीं है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन के रिपोर्ट के अनुसार 2022 में यूरोप में अभूतपूर्व गर्मी के कारण 15,000 लोगों की मौत हुई। सन 1901 में पृथ्वी के औसत तापमान का सटीक रिकॉर्ड रखने की प्रक्रिया शुरू होने के बाद से अब तक के सात सबसे गर्म वर्ष 2015 के बाद के ही रहे हैं। 2022 के मार्च और अप्रैल पिछले 122 सालों में सबसे गर्म मार्च और अप्रैल रहे। 2023 के फ़रवरी और जून अब तक के सबसे गर्म फ़रवरी और जून रहे हैं। विश्व मौसम विज्ञान संस्थान द्वारा मई में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार 2023-2027 अब तक के सबसे गर्म पाँच साल होने जा रहे हैं।

उक्त रिपोर्ट के अनुसार इस बात की 66 प्रतिशत सम्भावना है कि इन पाँच सालों में औसत भूमण्डलीय तापमान अस्थाई रूप से 1.5 डिग्री सीमा का अतिक्रमण कर सकता है। लेकिन जून के पहले सप्ताह में ही औसत भूमण्डलीय तापमान कुछ दिनों के लिए 1.5 डिग्री के ऊपर चला गया था। ऐसा नहीं है कि इतिहास में पहली बार पृथ्वी का औसत तापमान 1.5 डिग्री के ऊपर गया हो। लेकिन कई दिनों तक लगातार औसत तापमान इस सीमा से ऊपर रहा हो, ऐसा पहली बार हुआ है। यह घटना आगे आने वाले भयानक मंज़र का एक संकेत मात्र है।

ग़ौरतलब है कि जलवायु संकट पर रोक लगाने और पृथ्वी को विनाश से बचाने के लिए 2015 के पेरिस समझौते में भूमण्डलीय ऊष्मीकरण को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक रोकने की सीमा तय की गयी थी। लेकिन जलवायु संकट पर रोक लगाने के सभी बुर्जुआ हस्तक्षेपों के समान पेरिस समझौता भी कार्यान्वयन से कोसों दूर एक जुमला मात्र बनकर रह गया है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) की पिछले साल प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार अगर सभी देश इसी ढर्रे पर चलते रहे तो सदी के अन्त तक पृथ्वी का औसत तापमान 2.8 डिग्री तक बढ़ जायेगा। 'सीओपी' जैसे अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए कितने प्रयत्नशील हैं इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि संयुक्त अरब अमीरात की राष्ट्रीय तेल कम्पनी के प्रमुख सुलतान अल जबेर को 'सीओपी-28' का अध्यक्ष बनाया गया है। यह क़दम बुर्जुआ मानकों के हिसाब से भी इतना लज्जाजनक है कि साम्राज्यवादी भोंपू मीडिया का एक हिस्सा तक इसकी आलोचना करने से ख़ुद को रोक नहीं पाया। एक ओर जहाँ दुनियाभर के पर्यावरणविद जलवायु संकट से निजात पाने के लिए जीवाश्म ईंधन की अन्धाधुन्ध खपत पर रोक लगाने की माँग कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर दुनिया के सबसे बड़े तेल कम्पनियों के अधिकारियों को लाल कालीन बिछा कर 'सीओपी' जैसे सम्मेलनों में स्वागत किया जा रहा है।

आज जलवायु परिवर्तन के विकराल होते रूप ने समूची मानवजाति के अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया है। लेकिन तात्कालिक तौर पर जलवायु परिवर्तन से सबसे ज़्यादा नुक़सान मेहनतकशों का ही होता है। झुलसा देने वाली लू, कड़ाके की ठण्ड, बेमौसम मूसलाधार बारिश, नियमित सूखा, बाढ़ और चक्रवात आदि आपदाओं से तात्कालिक बचाव के लिए पूँजीपतियों, धन्नासेठों, धनी किसानों और नेता मन्त्रियों के पास पर्याप्त संसाधन होते हैं। लेकिन हम मेहनतकश जो कारख़ानों, खेतों और निर्माण परियोजनाओं में काम करते हैं, बेलदारी करते हैं, डिलीवरी सर्विस में लगे हैं, रेहड़ी-खोमचे लगाकर पेट पालते हैं, हम इन आपदाओं से कैसे बचेंगे? 'मैकिंसी ग्लोबल इन्स्टीट्यूट' के हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारत के 75 प्रतिशत मज़दूर, यानी 38 करोड़ मज़दूर, भीषण गर्मी के कारण शारीरिक तनाव झेलते हैं। लू के जानलेवा प्रभाव से निपटने के लिए सरकार का मुख्य नीतिगत उपकरण है हीट एक्शन प्लान। अब तक सिर्फ़ केन्द्र सरकार, कुछ राज्यों और शहरों ने अपने हीट एक्शन प्लान बनाये हैं। जलवायु विशेषज्ञों ने इन नीतिगत योजनाओं में कई बुनियादी ख़ामियों पर विस्तार से लिखा है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मेहनतकश वर्ग इन हीट एक्शन प्लान से पूरी तरह ग़ायब हैं। इन योजनाओं में यह नहीं बताया जाता है कि ग़रीब और मेहनतकश आबादी लू से किस तरह प्रभावित होती है और इससे बचने के लिए उन्हें क्या विशेष सुविधाएँ मिलनी चाहिए।

इसके अलावा, बढ़ती बेरोज़गारी और महँगाई की मार झेलते हम मज़दूर व मेहनतकश वर्ग पहले से ही खाद्य असुरक्षा में जीते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती गर्मी, सूखा और बाढ़ से हमारे खाद्य सुरक्षा का संकट और ज़्यादा बढ़ जाता है। पिछले साल भीषण गर्मी के कारण देश में गेहूँ के फ़सल में आयी भारी गिरावट और इसके फलस्वरूप गेहूँ, आटा और इनसे बनने वाले अन्य खाद्य पदार्थों की बाज़ार क़ीमतों में आयी उछाल इस प्रक्रिया का एक उदाहरण है। एक रिपोर्ट के अनुसार इस साल भीषण गर्मी के कारण 10 से 30 प्रतिशत फल और सब्ज़ियाँ बर्बाद हो सकती हैं। वैश्विक खाद्य नीति रिपोर्ट 2022 के अनुसार 2050 तक भारत में 7 करोड़ लोग जलवायु परिवर्तन के कारण भूख का शिकार हो सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती गर्मी और लू और इसके बहुआयामी प्रभाव मज़दूर वर्ग के लिए वर्ग संघर्ष का एक सवाल है। कार्यस्थल में गर्मी से बचने के लिए ज़रूरी प्रबन्ध हमारी जायज़ माँग है। हम जहाँ काम करते हैं वहाँ हमारे लिए अच्छे हवादार कमरे, आराम करने की जगह, ठण्डा पानी, नियमित अन्तराल में ब्रेक, कार्यस्थल से रिहायश तक यातायात की सुविधा, प्राथमिक उपचार के इन्तज़ाम, गर्मी से बचने के लिए उपयुक्त वर्दी, दस्ताने, जूते आदि मुहैया कराना नियोक्ता की बुनियादी ज़िम्मेदारी है।

इसके साथ ही, हमें यह भी जान लेना होगा कि जलवायु परिवर्तन कोई 'मानवनिर्मित आपदा' नहीं है जैसा कि इस पूँजीवादी व्यवस्था के भाड़े के कलमघसीट हमें बताते हैं। मुनाफ़े की हवस में पूँजीपति वर्ग श्रम के शोषण के साथ साथ प्रकृति का भी अन्धाधुन्ध दोहन कर रहा है। शोषणकारी वर्ग समाज के सामाजिक सम्बन्धों के तहत मनुष्य का प्रकृति के साथ रिश्ता एक दुश्मनाना रिश्ता बन गया दिखता है, लेकिन वास्तव में यह पूँजीवादी समाज के भीतर श्रम और पूँजी के बीच का दुश्मनाना अन्तरविरोध है, जिसका नतीजा हमें प्राकृतिक विनाश के तौर पर सामने दिखायी दे रहा है। पूँजीवादी समाज की चौहद्दियों के अन्दर इस दुश्मनाना अन्तरविरोध का समाधान नामुमकिन है। एक ऐसी व्यवस्था जो मुनाफ़े के बदले मनुष्य के ज़रूरत को केन्द्र में रखती हो, वैसी व्यवस्था में ही मानव समाज और प्रकृति के आपसी विनाश को रोका जा सकता है। सिर्फ़ ऐसी व्यवस्था में मानव समाज और प्रकृति एक साथ समृद्ध हो सकते हैं।

मिथकों को यथार्थ बनाने के संघ के प्रयोग

● भारत

'आदिपुरुष' के रिलीज़ होने के बाद से लगातार इस फिल्म की आलोचना हो रही है कि राम कथा को "गेम ऑफ़ थ्रोंस" टाइप बनाकर रख दिया। डायलॉग जो मनोज मुंतशिर द्वारा लिखे गये हैं, उसपर भी फिल्म की थू-थू हो रही है। सब कह रहे हैं कि इससे अच्छी तो रामानन्द सागर कृत 'रामायण' थी, जिसने बिल्कुल ऐतिहासिकता (!!??) के साथ रामायण को दिखाया! इस मसले पर सारे संघी और लिबरल एकजुट हैं और एकसाथ 'आदिपुरुष' का विरोध कर रहे हैं और पुराने 'रामायण' सीरियल के गुणगान गा रहे हैं। थोड़ा बहुत रेडिकल तेवर दिखाते हुए कुछ लिबरल यह कह रहे हैं कि अब क्यों नहीं इस फिल्म का बॉयकॉट किया जा रहा! इस फिल्म के बायकॉट न होने के पीछे असल कारण है मनोज मुंतशिर का भाजपा और संघ से अच्छे सम्बन्ध होना और फिल्म के तमाम डायलागों द्वारा मौजूदा 'लव जिहाद' आदि की नौटंकी को हिन्दू आबादी में हवा देने का प्रयास करना। फिल्म रिलीज़ होने से पहले भाजपा के कई मुख्यमंत्रियों ने फिल्म को शुभकामनाएँ दी थी। इसलिए अभी सारे अण्डभक्त कन्फ्यूज हैं कि इस फिल्म से अपनी भावनाओं को आहत करें या न करें!

पर वहीं दूसरी तरफ़ कई लोग इस बात पर एकमत हैं कि 'रामायण' भारत का इतिहास है, जिसे रामानन्द ने अच्छे से फिल्माया। रामानन्द सागर फिल्मित 'रामायण' भी 'वाल्मीकि रामायण' का एक भौंडा संस्करण है। और वाल्मीकि रामायण भी कोई इतिहास का दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि एक लोककथा पर आधारित है, जो प्राचीनकाल में 'राम दसरथी' के नाम से प्रचलित थी। लेकिन यहीं संघ का प्रोपेगेंडा काम कर रहा है। यानी मिथक को इतिहास बनाकर पेश करना। वाल्मीकि रामायण मिथकों पर आधारित महाकाव्य है, वाल्मीकि द्वारा जो रामकथा प्रस्तुत की गयी है, उसके लिए कोई ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं है। पर जैसा कि हर दौर का साहित्य, उस दौर के समाज के बारे में बताता है, उसी प्रकार रामायण से उस दौर के समाज के बारे में एक हद तक जान सकते हैं, साहित्यिक व ऐतिहासिक आलोचना के वैज्ञानिक उपकरण के द्वारा। मगर स्वयं ये साहित्यिक रचनाएँ हैं, ऐतिहासिक लेखन या दस्तावेज़ नहीं।

आइए, अब संक्षेप में जानते हैं कि कैसे रामायण इतिहास नहीं है! वाल्मीकि का समय हमें ज्ञात नहीं है, पर यह कहा जा सकता है कि आज से क़रीब डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व (लगभग 300-500 ई.) के अन्त का समय उनकी रामायण का आधार रहा होगा। गुप्त काल से पहले वाल्मीकि रामायण का स्वरूप कैसा रहा होगा, यह जानने के लिए फ़िलहाल कोई ठोस साधन नहीं हैं। रामायण की जितनी भी हस्तलिपियाँ मिली हैं, एक हज़ार साल से अधिक पुरानी नहीं हैं। रामायण की सबसे पुरानी हस्तलिपि 1020 ई. की है, जो नेपाल से प्राप्त हुई। रामायण में समय समय पर नयी-नयी बातें जोड़ी जाती रही हैं, इसलिए उपलब्ध हस्तलिपियों में ढेर सारे पाठान्तर देखने को मिलते हैं। वाल्मीकि ने मूल कथा में बहुत सारी काल्पनिक घटनाओं, मिथकों और कल्पित पात्रों का समावेश कर अपने महाकाव्य की रचना की। बाद में कथाकारों, कीर्तनकारों, चारणों, भाटों और पौराणिकों ने वाल्मीकि की उस रामकथा में अनेकों बातें जोड़ीं।

रामानन्द कृत रामायण भी वाल्मीकि रामायण का अनूदित परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण है। गुप्तकाल में वाल्मीकि रामायण का जो स्वरूप बना, उसके आधार पर बाद में कई कृतियों की रचना हुई। कालिदास ने रघुवंशम् काव्य की रचना की। उसके क़रीब तीन-चार सदियों बाद भवभूति ने उत्तररामचरित की रचना की। उत्तर भारत में तुलसीदास के रामचरित को और दक्षिण भारत के कम्बन की रामकथा को सबसे ज़्यादा प्रसिद्धि मिली। 2008 में दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल किये गये रामानुजन के निबन्ध '300 रामायणाज़' को लेकर संघियों ने बवाल किया था। रामानुजन ने इस निबन्ध में साक्ष्यों के ज़रिए दिखाया था कि भारत में रामायण के लगभग 300 संस्करण प्रचलित हैं।

राम के बारे में कहा जाता है कि वे कृष्ण से पहले त्रेता युग में हुए। सम्भव है कि अयोध्या या कोसल के इक्ष्वाकु कुल में दशरथ पुत्र राम कोई ऐतिहासिक पुरुष सचमुच हुए हों, परन्तु वाल्मीकि ने अपने काव्य में जो रामकथा प्रस्तुत की है, उसके लिए फिलहाल गुप्तकाल से पहले का कोई ऐतिहासिक या पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। साथ ही समूचे वैदिक वाङमय में एक देवता के रूप में राम का कोई स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है। उपनिषदों में विदेहराज जनक की पर्याप्त चर्चा है, पर दशरथ के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। पाणिनी और महाभाष्यकार पतंजलि ने महाभारत के अनेकों पात्रों के उदाहरण दिये हैं, पर इन वैयाकरणों ने राम का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। गुप्तकाल से पहले का राम का कोई मन्दिर या मूर्तिशिल्प नहीं मिलता। तमाम तथ्यों और तर्कों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि राम कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं, रावण की लंका और सागर पर सेतु बाँधना भी कवि की कपोल कल्पना है।

हर सभ्यता के अपने महाकाव्य रहे हैं और उनके महानायक रहे हैं, चाहे वो यूनानी सभ्यता प्रमुख देवता ज़ियस थे जिसे आकाश देवता कहा जाता था, या हरक्यूलिस हो जिसे ग्रीक मिथक में महानायक माना गया है। हर सभ्यता के इतिहास को देखें तो उसके प्राचीन साहित्य में, महाकाव्यों में इस प्रकार के चरित्र मिलेंगे, जिनका आधार उस दौर का समाज और सभ्यता ही होते हैं, मगर उसके तमाम चरित्र वास्तव में कोई ऐतिहासिक चरित्र नहीं होते। इसी तरह महाभारत, रामायण भी हमारे देश के महान महाकाव्य हैं और उन पर साहित्यिक रचनाओं के रूप में ही विचार किया जा सकता है। निश्चित ही, उनमें इन महाकाव्यों को रचने वालों के विचारधारात्मक पूर्वाग्रह भी प्रकट होते ही हैं, जिस प्रकार ग्रीक त्रासदी के रचनाकारों के विचारधारात्मक व राजनीतिक पूर्वाग्रह ग्रीक त्रासदियों में प्रकट होते थे। लेकिन केवल उनमें मौजूद शासक वर्ग के दृष्टिकोण के आधार पर ही उन्हें साहित्यिक तौर पर ख़ारिज नहीं किया जा सकता है। यह सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक नज़रिये और ज्ञान के विभिन्न रूपों के प्रति उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विपरीत है। बहरहाल, रामायण व महाभारत जैसे इन महाकाव्यों को आज क्यों इतिहास की तरह पेश किया जा रहा है, इसके पीछे का मक़सद क्या है? आइए जानते हैं!

इतिहास का निर्माण जनता करती है। फ़ासिस्ट ताक़तें जनता की इतिहास-निर्मात्री शक्ति से डरती हैं। इसलिए वे न केवल इतिहास के निर्माण में जनता की भूमिका को छिपा देना चाहती हैं, बल्कि इतिहास का ऐसा विकृतिकरण करने की कोशिश करती हैं जिससे वह अपनी विचारधारा और राजनीति को सही ठहरा सकें। संघ परिवार हमेशा से ही इतिहास का ऐसा ही एक फ़ासीवादी कुपाठ प्रस्तुत करता रहा है। 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद के विध्वंस की घटना इस फ़ासीवादी मुहिम की एक प्रतीक घटना है। लम्बे समय तक जनता के बीच में यह मिथ्या प्रचार करके कि बाबरी मस्जिद को एक प्राचीन मन्दिर को तोड़कर बनाया गया है और यह उसी जगह पर बनी है जहाँ पर राम का जन्म हुआ था, फ़ासिस्टों ने देशव्यापी आन्दोलन खड़ा किया। पूरे देश में बड़े पैमाने पर दंगे हुए और लोगों की लाशों को रौंदता हुआ फ़ासिस्टों का रथ अपनी मंज़िल तक तब पहुँचा, जब कोर्ट ने तमाम पुरातात्विक साक्ष्यों और तथ्यों को दरकिनार करते हुए इस आधार पर फ़ासिस्टों के पक्ष में फ़ैसला दिया कि बहुसंख्यक हिन्दू यह मानते हैं कि उक्त स्थान पर राम का जन्म हुआ था, इसलिए यही सच होगा!

संचार-क्रान्ति के इस दौर में पूँजी का वरदहस्त पाकर संघी फ़ासीवादियों ने इतिहास के विकृतिकरण की अपनी मुहिम को नया आयाम दिया है। फ़िल्मों, टीवी चैनलों से लेकर फ़ेसबुक, व्हाट्सएप और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया के हर पहलू पर आज फ़ासिस्टों का बोलबाला है। आरएसएस से जुड़े फ़िल्मकार अपनी फ़िल्मों में इतिहास के सही तथ्यों को उलटकर पेश कर रहे हैं। जानबूझकर इतिहास में छेड़खानी करते हुए फ़िल्मों में मुसलमानों को दुश्मन के रूप में पेश करने, टीवी चैनलों पर इतिहास के फ़ासीवादी संस्करण पर आधारित सीरियल दिखाये जाने जैसी बातें आम हो चुकी हैं। दिन-रात विषवमन करते हज़ारों यूट्यूब चैनल दिन-रात युवाओं की बहुत बड़ी आबादी के दिमाग़ में ज़हर घोल रहे हैं। भारत के फ़ासीवादी विगत एक शताब्दी में एक लम्बी प्रक्रिया में देश की हिन्दू आबादी के बड़े हिस्से में मिथकों को कॉमन सेंस ('सामान्य बोध') के रूप में स्थापित करने के लिए लगातार प्रयासरत रहे हैं और काफ़ी हद तक इसमें सफलता भी प्राप्त की है। कल्पित अतीत के गौरव की वापसी का एक धार्मिक-भावनात्मक प्रतिक्रियावादी स्वप्न "रामराज्य" की स्थापना और भारत को विश्वगुरु बनाने जैसे नारों के रूप में संघी फ़ासिस्टों ने देश की हिन्दू आबादी के बड़े हिस्से में भरा है। भारतीय समाज के ताने-बाने में तर्कणा, वैज्ञानिक चिन्तन और जनवाद का अभाव आरएसएस के फ़ासीवादी एजेण्डे के लिए उर्वर ज़मीन का काम करता है।

हमारे देश में पूँजीवादी लोकतंत्र पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रान्ति की एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के नतीजे के तौर पर नहीं स्थापित हुआ। आज़ादी के बाद भारत में नेहरू के नेतृत्व में क्रमिक पूँजीवादी विकास का रास्ता चुना गया। पूँजीवादी विकास अपनी स्वाभाविक गति से ग्रामीण और शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग और मध्यवर्ग की एक आबादी को उजाड़कर असुरक्षा और अनिश्चितता की तरफ़ धकेलता रहता है। असुरक्षा और अनिश्चितता की यह स्थिति इस टुटपुँजिया वर्ग में प्रतिक्रियावाद की ज़मीन तैयार करती है। यह प्रतिक्रियावादी ज़मीन और जनमानस में जनवाद, तर्कणा और वैज्ञानिक चिन्तन की कमी टुटपुँजिया वर्ग को फ़ासीवादी प्रचार का आसान शिकार बना देती है।

फ़ासीवाद उजड़ते और उभरते हुए टुटपुँजिया वर्ग का प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है। यह इस टुटपुँजिया वर्ग को एक तरफ़ तो नस्लीय, जातीय, धार्मिक आधार पर एक नक़ली दुश्मन प्रदान करता है। दूसरी तरफ़ वह इसके सामने एक गौरवशाली अतीत का मिथक रचता है। भारतीय फ़ासीवादी इसी तरह लम्बे समय से देश की हिन्दू आबादी को अतीत का वह स्वप्न दिखाते रहे हैं जब इस महान जम्बूद्वीप भारतखण्ड पर स्वर्ण युग था, जिसे मुगलों तथा यवनों ने छीन लिया! आरएसएस के इस कल्पित स्वर्ण युग में वे सभी वैज्ञानिक-तकनीकी उपलब्धियाँ जो मानवता ने आज हासिल की है, वास्तव में पहले ही हासिल की जा चुकी थीं! औपनिवेशिक सामाजिक संरचना की कोख से जन्मे और समझौता-दबाव-समझौता की रणनीति के तहत सत्ता हासिल करने वाले भारतीय पूँजीपति वर्ग के पास यूरोपीय मध्यवर्ग की तरह पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रान्ति की तार्किकता और वैज्ञानिकता तथा मानवतावाद और जनवाद की कोई विरासत नहीं है और भारतीय मध्यवर्ग में भी इन्हीं वजहों से इसका अभाव है। यह न तो आजीवक और लोकायत से परिचित है, न ही सांख्य, न्याय, वैशेषिक दर्शनों अथवा चरक और सुश्रुत की विरासत से, जो कि प्राचीन भारत की भौतिकवादी, वैज्ञानिक व विद्रोही चिन्तन परम्पराएँ थीं। यहाँ तक कि निकट अतीत के कबीर, नानक, रैदास तथा राहुल सांकृत्यायन, राधामोहन गोकुल, गणेश शंकर विद्यार्थी की रचनाओं से भी इसका परिचय नहीं है और न ही इसने क्रान्तिकारी आन्दोलन की वैचारिक विरासत का ठीक से अध्ययन किया है। पिछले सौ सालों में समाज के ताने-बाने में अपनी पैठ के ज़रिए और अनगिनत प्रयोगों, मिथ्याप्रचारों और आन्दोलनों के ज़रिए फ़ासिस्टों ने अपने फ़ासीवादी प्रचार की ज़द में एक बहुत बड़ी आबादी को ले लिया है।

फ़ासिस्ट सर्वहारा वर्ग के सबसे बड़े दुश्मन हैं और यही वजह है कि वे सर्वहारा क्रान्तियों के ख़िलाफ़ कुत्सा-प्रचार करने और उसकी उपलब्धियों पर कीचड़ उछालने का काम करते हैं। एक सर्वहारा वर्गीय दृष्टिकोण से नये सिरे से पुनर्जागरण और प्रबोधन की मुहिम को समाज में व्यापक तौर पर चलाना आज के समय में फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष का एक अहम मोर्चा है।

प्रेमचन्द के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

सम्पत्ति विष की गाँठ

जब तक सम्पत्ति मानव-समाज के संगठन का आधर है, संसार में अन्तरराष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। राष्ट्रों-राष्ट्रों की, भाई-भाई की, स्त्री-पुरुष की लड़ाई का कारण यही सम्पत्ति है। संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गांठ है। जबतक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तबतक मानव-समाज का उ(ार नहीं हो सकता। मजदूरों के काम का समय घटाइये, बेकारों को गुजारा दीजिए, जमींदारों और पूंजीपतियों के अधिकारों को घटाइये, मजदूरों-किसानों के स्वत्वों को बढ़ाइये, सिक्के का मूल्य घटाइये, इसतरह के चाहे जितने सुधर आप करें, लेकिन यह जीर्ण दीवार इस तरह के टीपटाप से नहीं खड़ी रह सकती। इसे नये सिरे से गिराकर उठाना होगा।...

... संसार आदिकाल से लक्ष्मी की पूजा करता चला आता है।... लेकिन संसार का जितना अकल्याण लक्ष्मी ने किया है, उतना शैतान ने नहीं किया। यह देवी नहीं डायन है।

सम्पत्ति ने मनुष्य को क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है। मरते दम तक भी हमें यही हसरत रहती है कि हाय, इस सम्पत्ति का क्या हाल होगा। हम सम्पत्ति के लिए जीते हैं, उसी के लिए मरते हैं। हम विद्वान बनते हैं सम्पत्ति के लिए, गेरुए वस्त्रा धरण करते हैं सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर हम क्यों बेचते हैं? दूध् में पानी क्यों मिलाते हैं? भांति-भांति के वैज्ञानिक हिंसा-यंत्रा क्यों बनाते हैं? वेश्याएं क्यों बनती हैं, और डाके क्यों पड़ते हैं? इसका एकमात्रा कारण सम्पत्ति है। जबतक सम्पत्तिहीन समाज का संगठन नहीं होगा, जबतक सम्पत्ति व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शान्ति न मिलेगी।

– प्रेमचन्द ('राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता' लेख से)

उत्तराखण्ड : हिन्दुत्व की नई प्रयोगशाला

● अपूर्व

'एक झूठ को अगर बार-बार दोहराते रहा जाये तो उसे सच मान लिया जाता है' – गोएबेल्स (हिटलर का प्रचार मन्त्री)

हिटलर के प्रचार मंत्री गोएबेल्स की इस उक्ति को भारत के फ़ासिस्ट अच्छी तरह लागू करने की कला में माहिर हो चुके हैं! 1925 से ही आरएसएस की शाखाओं और प्रचार अभियानों में मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ जितने झूठ, मनगढंत तथ्यों और मिथ्या प्रचारों का जो प्रोपेगेण्डा चलाया गया है उसे आज हिन्दू आबादी का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा सत्य समझने लगा है। इनके प्रचार अभियानों में अन्धराष्ट्रवाद, हिन्दू गर्व का मिथ्याभिमान, मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों को "हिन्दू धर्म व देश के लिए खतरा" जैसे मिथ्या विचारों को बहुत ही कुशलता के साथ प्रचारित किया जाता है। उनके इस प्रचार अभियान से निम्न मध्यवर्ग और मज़दूर वर्ग की वह आबादी ज़्यादा प्रभावित होती है, जो भविष्य की अनिश्चितताओं, धार्मिक पोंगापंथ, पाखण्ड और अन्धविश्वास में डूबी व अतार्किक होती है, यानी विशेष तौर पर अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूर व लम्पट मज़दूर आबादी। यह वह आबादी है जो राजनीतिक चेतना, शिक्षा व संस्कृति के अभाव में ज़िन्दगी की वास्तविक समस्याओं, मसलन रोजी-रोटी, आर्थिक तंगी, गरीबी-बदहाली जैसी समस्याओं को पूँजीवादी व्यवस्था की समस्या के तौर पर नहीं समझ पाती और किसी छद्म दुश्मन या कारक को इसका मुख्य कारण मानने लगती है। क्रान्तिकारी शक्तियों द्वारा उपयुक्त क्रान्तिकारी प्रचार और जनसंघर्षों के अभाव में, इसी आबादी के बीच संघ का दुष्प्रचार रूपी पौधा फलता-फूलता है और बरगद का आकार लेता जाता है। इसके अतार्किक, अन्धविश्वास और मिथ्याभिमान की बंजर भूमि पर हिन्दुत्व की खेती की जाती है और सही समय आने पर उसकी फसल काटी जाती है।

आजकल इस फसल की बुवाई, रोपाई, सिंचाई का प्रयोग उत्तराखण्ड में जोर-शोर से चल रहा है। मुसलमानों को निशाना बनाकर यहाँ तथाकथित ''लव जिहाद'', ''लैण्ड जिहाद", "व्यापार जिहाद" के साथ ही "जनसंख्या जिहाद" का मामला खूब उछाला जा रहा है। संघियों के इन झूठे प्रचारों को हवा देने में गोदी मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक के प्लेटफ़ॉर्म लगे हुए हैं। यहाँ भाजपा की धामी सरकार मुसलमानों के ख़िलाफ़ लगातार कोई न कोई अभियान छेड़े हुए है। आरएसएस का मुखपत्र 'पांचजन्य' रोज कहीं न कहीं से "लैंड जिहाद", ''लव जिहाद'' और उत्तराखण्ड में "मुसलमानों की आबादी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी" की झूठी और बेबुनियाद ख़बरें लाता रहता है। इन झूठे प्रचार अभियानों की निरन्तरता और तेजी इस कारण से भी ज़्यादा बढ़ी है क्योंकि राज्य का मुख्यमंत्री तक "लव जिहाद'' और 'लैण्ड जिहाद" पर लगातार भाषणबाजी करता रहता है। ऐसा लगता है कि जबसे यह संविधान और धर्मनिरपेक्षता की शपथ खाकर कुर्सी पर बैठा है, तबसे इसने संघी कुत्सा प्रचारों को प्रमाणित और उसे सिद्ध करने का ठेका ले लिया है।

क्या हैं ये कुत्सा प्रचार और क्या है उसकी हकीकत? सबसे पहले संघियों के झूठ के पिटारे को एक साथ खोलकर रख देते हैं, उसके बाद विस्तार से इस पर बात करते हैं। इस पिटारे में "जिहाद" जैसे शब्दों का भण्डार है। जिसमें हिन्दू आबादी के बीच मुस्लिम आबादी के अप्रत्याशित रूप से बढ़ने, हिन्दुओ के धार्मिक स्थलों के अपवित्र होने, हिन्दुओं के रोज़गार और जगह-ज़मीन छिन जाने के "भय" को बढ़ावा देना है। इस "भय" को बरकरार रखने के लिए क्या-क्या तथ्य गढ़े जा रहे हैं, आइए देखते हैं-

"पछुवा दून सहित हिन्दुओं की धर्मनगरी हरिद्वार के चारों ओर मुस्लिम आबादी बढ़ रही है!"

"उत्तराखण्ड के चार ज़िलों देहरादून, हरिद्वार, उधमसिंह नगर और नैनीताल में मुस्लिम आबादी एक प्रतिशत से बढ़कर अठारह प्रतिशत तक हो गयी है।"

"उत्तराखण्ड के वन क्षेत्रों और गंगा जैसी पवित्र नदी के किनारों पर मुस्लिम क़ब्जा करके अपनी बस्तियाँ बना रहे है। वहाँ मस्जिदें, मज़ार और मदरसे बना रहे हैं।"

"चारधाम यात्रा के मुख्य मार्गों पर मुस्लिम दुकानदारों की संख्या बढ़ रही है।"

"पहाड़ों से हिन्दू आबादी पलायन करके जा रही है। वहाँ मुस्लिम उनके मकानों और खेतों को सस्ते दामों में ख़रीद रहे हैं।" यानी, "भूमि जिहाद", "व्यापार जिहाद" और "जनसंख्या जिहाद" का "आतंक" पूरे उत्तराखण्ड में छाया हुआ है! इसके साथ ही संघियों का चिर परिचित "लव जिहाद" तो चलता ही रहता है!

इन सब झूठे तथ्यों और अफवाहों से अलग वास्तविकता कुछ और ही है। इसलिए सिलसिलेवार उपरोक्त झूठे प्रचारों के जवाब में सच्चाई को समझ लेते हैं।

पछुवा दून सहित हरिद्वार के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र से लगे दर्जनों गाँवों में मुस्लिम आबादी कई पीढ़ियों से रहती चली आ रही है। वहाँ रहने वाली आबादी के बीच जब प्रत्यक्षतः जाँच-पड़ताल की गयी तो पता चला कि इन इलाकों में मुस्लिम आबादी की संख्या में न तो कोई अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी हुई है और न ही कमी! हाँ यह ज़रूर है कि कोरोना महामारी के बाद बहुत से परिवारों का रोजी-रोज़गार कमाने का ज़रिया बदला है। यह हिन्दुओं में भी हुआ है। जिनकी दुकान थी वो उजड़कर कोई छोटा-मोटा धन्धा करने, ठेला-खोमचा लगाने या दूसरे तरह के मेहनत-मज़दूरी के काम में लग गये! दूसरे, पूँजीवादी व्यवस्था की अनिश्चतताओं ने पूरे देश में ही ग़रीब मेहनतकशों की आबादी को एक जगह से उजाड़कर दूसरी जगह जाने के लिए मज़बूर किया है। इन्हीं अनिश्चिताओं ने ग़रीब मुस्लिम मेहनतकशों को भी अपने रोजी-रोटी की तलाश में इधर-उधर भटकाया है।

उत्तराखण्ड के चार ज़िलों में मुस्लिम आबादी के एक प्रतिशत से बढ़कर अठारह प्रतिशत होने की बात भी एक झूठा प्रचार ही है। 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड राज्य में 82.97 प्रतिशत हिन्दू और 13.95 प्रतिशत मुस्लिम हैं। जहाँ तक चार ज़िलों में हिन्दू-मुस्लिम की जनसंख्या का मामला है तो 2001 से लेकर 2011 तक की जनगणना के आँकड़े नीचे दिये जा रहे उनपर एक नज़र मारते ही संघियों के इस झूठ का पर्दाफाश हो जाता है कि मुसलमानों की आबादी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है।

जनगणना (2001)

	हिन्दू	मुस्लिम
देहरादून	10,86,094	139197
नैनीताल	6,55,290	86,532
हरिद्वार	9,44,927	4,78,274
यूएसनगर	8,32,811	2,54,457

जनगणना (2011)

	हिन्दू	मुस्लिम
देहरादून	14,24,916	2,02,057
नैनीताल	8,09,717	1,20,742
हरिद्वार	12,14,935	6,48,119
यूएसनगर	11,04,452	3,72,267

2021 की जनगणना अभी प्रकिया में है। लेकिन इन आँकड़ों से ये साफ़ है कि मुस्लिम आबादी की संख्या में कहीं भी कोई अप्रत्याशित बढोत्तरी नहीं है।

हिन्दुत्ववादी दक्षिणपंथी संगठनों और कुछ धर्म के ठेकेदारों के अनुसार पहाड़ों से हिन्दू आबादी का पलायन हो रहा है और उनके ख़ाली पड़े गाँवों पर मुसलमान क़ब्ज़ा कर रहे हैं। इसका भी वास्तविकता से दूर-दूर तक का कोई सम्बन्ध नहीं है। आप खुद सोचिए कि जब एक आबादी अपने रोज़गार, शिक्षा, चिकित्सा के अभाव और बेहतर जीवन की तलाश में पहाड़ों से पलायन कर रही है तो वहीं दूसरी आबादी इन सबके बिना पहाड़ों के गाँवों में कैसे रह सकती है! जहाँ न तो रोज़गार के साधन हैं, न ही सड़कें, बिजली और पानी की सुविधा! शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं का भी जहाँ अभाव है! इन अफ़वाहों की सबसे मजेदार बात यह है कि इनमें कोई ठोस तथ्य या आँकड़े नहीं दिये जाते हैं।

अब आते है इनके ''लैण्ड जिहाद" पर जिस पर धामी सरकार का बुलडोज़र लगातार चल रहा है। संघियों का दावा है कि मुस्लिम उत्तराखण्ड के वन और नदी क्षेत्र की भूमि पर अवैध क़ब्ज़ा कर रहे हैं। वहाँ बस्तियाँ बसाने के साथ मस्जिद और मज़ार बना रहे हैं। जबकि वास्तविकता कुछ और है। वन विभाग के एक सर्वेक्षण के अनुसार उसकी 11 हज़ार हेक्टेयर की भूमि पर अवैध क़ब्ज़ा है। लेकिन ज़्यादातर अवैध क़ब्ज़ा मस्जिदों या मज़ारों का नहीं बल्कि मन्दिरों, आश्रमों और बड़े-बड़े रिज़ॉर्ट का है। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के एक हालिया सर्वे के अनुसार उत्तराखण्ड की वनभूमि पर मज़ारों से 10 गुना ज़्यादा मन्दिरों और आश्रमों का क़ब्ज़ा है। यही कारण है कि ग्यारह हजार हेक्टेयर अवैध क़ब्ज़े की भूमि से मात्र बाइस सौ हेक्टेयर भूमि को क़ब्ज़ा मुक्त करके इस बुलडोज़र अभियान को रोक दिया गया है।

सवाल ये है कि उत्तराखण्ड जैसे छोटे से राज्य में हिन्दुत्व के इस प्रयोग को अंजाम देने का मक़सद क्या है! जहाँ तथाकथित "लव जिहाद" के ख़िलाफ़ पुरोला जैसे छोटे से कस्बे में हज़ारों की संख्या में भीड़ प्रदर्शन करती है! मुसलमानों को अपनी दुकान और मकान ख़ाली करके चले जाने की खुलेआम धमकी दी जाती है! मज़ारों को तोड़े जाते हुए सैकड़ों वीडियो और ख़बरें शेयर किये जाते हैं!

इसका जवाब है कि आज देश के किसी भी हिस्से में हिन्दुत्व की राजनीति को पोषित करने वाली कोई भी घटना घटती है तो उसका देशव्यापी फ़ायदा भाजपा को होता है। 1925 से ही संघ ने बहुसंख्यक हिन्दुओं के बीच अल्पसंख्यक मुसलमानों का जो "भय" पैदा किया है उसकी राजनीति के लिए एक छोटी-सी घटना ही काफ़ी है। झूठे प्रचारों और अफ़वाहों को मिलाकर मुसलमानों की जिस झूठी छवि को संघ पेश करना चाहता है वह झूठी छवि अगर संघ द्वारा कहीं भी साज़िशाना निर्मित की जाती है तो इससे हिन्दुत्व की राजनीति को अपने आपको सही व जायज़ ठहराने का मौका मिलता है। उत्तराखण्ड में मुसलमानों के ख़िलाफ़ जिस "लैण्ड जिहाद" या "लव जिहाद" पर कार्रवाई धामी की सरकार कर रही है, उसकी सच्चाई चाहे जो हो, लेकिन गोदी मीडिया से लेकर सोशल मीडिया द्वारा पूरे देश के पैमाने पर मुसलमानों को "भूमि जिहादी" और "लव जिहादी" बनाकर पेश किया गया। इसमें वे एक हद तक सफल भी हुए हैं।

उत्तराखण्ड में हिन्दुओं के कई धार्मिक स्थल होने के साथ ही यहाँ की बहुसंख्यक हिन्दू आबादी सवर्ण है और उस पर धर्म का प्रभाव पर्याप्त है। आरएसएस यहाँ हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व की राजनीति का एक दूसरे से घालमेल करते हुए मिथकों को यथार्थ बनाते हुए सवर्ण जातियों के धार्मिक और जातिगत पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देते हुए उनके बीच अपना आधार बनाता है। यहाँ जातिगत पूर्वाग्रह की जड़ें बहुत ही गहरी हैं। यहाँ तक कि इस राज्य आन्दोलन की शुरुआत ही आरक्षण विरोध से हुई थी! ऐसे में सहज ही समझा जा सकता है कि उत्तराखण्ड को हिन्दुत्व की प्रयोगशाला बनाने के लिए कितनी मुफ़ीद जमीन मौजूद है।

बोलते आँकड़े चीख़ती सच्चाइयाँ

(पेज 16 से आगे)

खाना-कपड़ा-मकान आदि बुनियादी ज़रूरतों के आधार पर तय होनी चाहिए) और सुप्रीम कोर्ट के 1992 के एक निर्णय की अनदेखी करते हुए कैलोरी की ज़रूरी खपत को 2700 की बजाय 2400 कर दिया गया है और तमाम बुनियादी चीज़ों की लागत भी 2012 की क़ीमतों के आधार पर तय की गयी हैं! यह मज़दूरों की मज़दूरी को कम-से-कम करने के लिए मोदी सरकार द्वारा किया जा रहा सीधा फर्जीवाड़ा और भ्रष्टाचार है। मोदी सरकार की इन्हीं नीतियों के चलते मेहनतकश तबके की आय में कमी आयी है और महँगाई की मार उन पर पहले से ज़्यादा पड़ रही है।

आय में गिरावट और वस्तुओं के बढ़ते दाम का नतीजा है कि मेहनतकश तबके की थालियों से लगातार दालें व सब्ज़ियाँ गायब होते जा रहे हैं। राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो द्वारा 2012 में किये गए आखिरी सर्वे में बताया गया था कि 1979 की तुलना में 2012 में औसतन हर ग्रामीण को 550 कैलोरी उर्जा, 13 ग्राम प्रोटीन, 5 मिग्रा आयरन, 250 मिग्रा कैल्शियम और 500 मि ग्रा विटामिन ए प्रतिदिन कम मिल रहा है। अब ऊपर दिए आँकड़ों से साफ़ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि कीमतों के बढ़ने से ये आँकड़े पिछले 10 सालों में और भी अधिक भयानक हुए होंगे। एक बड़ी आबादी सिर्फ़ रोज़ जीनेभर के सामान जुटाने लायक़ कमा रही है।

(ये आँकड़े 'भगतसिंह जनअधिकार यात्रा' की ओर से जारी पुस्तिका 'बढ़ती महँगाई की मार–ज़िम्मेदार मोदी सरकार' से लिये गये हैं)

समान नागरिक संहिता के पीछे मोदी सरकार की असली मंशा है साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण जिसकी फसल 2024 के लोकसभा चुनावों में काटी जा सके!

(पेज 1 से आगे)

उत्तराधिकार को पूर्ण रूप से स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित बना दिया जायेगा, क्या इसमें विवाह व तलाक से जुड़े कानूनों में पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ अलग होने की व्यवस्था की जायेगी जो फिलहाल हिन्दू पर्सनल लॉ में मौजूद नहीं है? इन सभी प्रश्नों पर मोदी सरकार कुछ बोल भी नहीं रही है और न ही समान नागरिक संहिता का कोई मसौदा अब तक पेश कर पायी है। साफ़ है कि साम्प्रदायिक तनाव की सिगड़ी को गरमाये रखना ही उसका मक़सद है।

तीसरी बात यह है कि यदि कोई समान नागरिक संहिता पूर्ण रूप से जनवादी, सेक्युलर और समानतामूलक रूप में लायी भी जाती है, तो उसे किसी भी नागरिक पर जबरन थोपा नहीं जा सकता है। मिसाल के तौर पर, यदि कोई दो नागरिक अपनी स्वेच्छा से अपने धर्म या समुदाय के पारम्परिक नियम-कायदों के अनुसार शादी करना चाहते हैं या तलाक लेना चाहते हैं, तो इसमें राज्यसत्ता कोई हस्तक्षेप तब तक नहीं कर सकती है जब तक कि इन दोनों में से कोई एक नागरिक कानूनी तौर पर हस्तक्षेप के लिए राज्यसत्ता के पास जाये।

चौथी बात यह है कि कोई भी जनवादी व सेक्युलर राज्यसत्ता किसी भी धार्मिक पर्सनल लॉ को कोई मान्यता नहीं दे सकती है। उसके लिए केवल एक ही नागरिक संहिता हो सकती है। इसलिए कोई भी जनवादी व सेक्युलर सरकार हर प्रकार के धार्मिक पर्सनल लॉ की कानूनी मान्यता को समाप्त कर देगी। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई समुदाय अपने समुदाय की पारम्परिक या धार्मिक कानूनी प्रथा के अनुसार विवाह नहीं कर सकता या तलाक नहीं ले सकता। यह उस नागरिक की आज़ादी होगी। लेकिन यदि कोई भी ऐसा नागरिक किसी विवाद के निपटारे के लिए राज्यसत्ता के पास आता है तो वह न्याय किसी धार्मिक पर्सनल लॉ के तहत नहीं किया जायेगा, बल्कि वह समान नागरिक संहिता के तहत किया जायेगा, चाहे वह मसला विवाह का हो, तलाक का हो या फिर सम्पत्ति से जुड़ा हुआ हो। यदि किसी को समान नागरिक संहिता के तहत न्याय नहीं चाहिए तो वह अपने धर्म की संस्थाओं या धर्म-गुरुओं के पास जाए। लेकिन एक सेक्युलर व जनवादी राज्यसत्ता किसी धार्मिक कानून के तहत न्याय नहीं दे सकती है, बल्कि एक सेक्युलर व जनवादी नागरिक संहिता के तहत ही न्याय दे सकती है, जो कि सभी नागरिकों के लिए समान है और जनवाद, सेक्युलरिज़्म व समानता पर आधारित है।

मसला क्या है और इस पर हमारा रवैया क्या होना चाहिए?

मसला यह है कि समान नागरिक संहिता अवश्य होनी चाहिए जो कि सही मायने में सेक्युलर व जनवादी हो तथा स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित हो। ज़ाहिरा तौर पर, आप पितृसत्तात्मक व जातिवादी तथा साम्प्रदायिक भाजपा से एक ऐसी समान नागरिक संहिता की उम्मीद नहीं कर सकते हैं। दूसरी बात, सर्वहारा वर्ग का नज़रिया यह है कि ऐसी समान नागरिक संहिता की स्थापना के साथ ही सारे धार्मिक पर्सनल लॉ औपचारिक व कानूनी तौर पर अपनी मान्यता खो देंगे। तीसरी बात, **इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि दो नागरिक स्वेच्छा से अपने धर्म या समुदाय के पारम्परिक कानूनों के तहत अपने निजी मसलों को चलाना चाहते हैं, तो राज्यसत्ता उसमें कोई दख़लन्दाज़ी करेगी।** ऐसी दख़लन्दाज़ी तभी हो सकती है जब किसी धार्मिक प्रथा के आधार पर कोई सामाजिक उत्पीड़न या हत्या करता है, मसलन, सती प्रथा पर कोई यह हवाला देकर अमल नहीं कर सकता है कि उसकी प्राचीन धार्मिक परम्पराओं का यह अंग है। इसके अलावा, जातिगत मसले पर्सनल या निजी नहीं बल्कि सामाजिक मसले हैं और जातिगत भेदभाव किसी भी रूप में दण्डनीय अपराध होना चाहिए और कोई भी अपने धर्म का हवाला देकर इन पर अमल नहीं कर सकता है। अफ़सोस की बात है कि केवल अस्पृश्यता को ही हमारे देश का कानून अवैध ठहराता है लेकिन जाति आधारित विवाह करने के लिए विज्ञापन देने, अपने जातिगत दम्भ का खुलेआम प्रदर्शन करने आदि के अन्य रूपों को रोकने का कोई रास्ता भारत के कानून में नहीं है। **बहरहाल, जाति का प्रश्न वैसे भी व्यक्तिगत कानून के दायरे में आता ही नहीं है और उसके दायरे में मुख्यत: विवाह, तलाक, व उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून आते हैं।** ऐसे में, यदि दो नागरिक अपनी इच्छा से अपने धार्मिक पारम्परिक कानून का पालन करना चाहते हैं, तो उन्हें ऐसा करने से कोई राज्यसत्ता रोक नहीं सकती है। **लेकिन उन दोनों में से कोई भी नागरिक विवाह, तलाक या उत्तराधिकार के मसले में अपने प्रति हुई नाइंसाफ़ी के जवाब में न्याय के लिए न्यायपालिका के पास आता है, तो वह इसका निपटारा किसी धार्मिक कानून या परम्परा के आधार पर नहीं, बल्कि समान नागरिक संहिता के आधार पर ही करेगी क्योंकि ऐसे धार्मिक कानूनों को एक जनवादी सेक्युलर राज्यसत्ता की न्यायपालिका कोई मान्यता ही नहीं देती है।**

इसलिए हमारी माँग यह होनी चाहिए कि **एक समान नागरिक संहिता जो कि क्रान्तिकारी जनवादी उसूलों पर आधारित हो, उसे अवश्य बनाया जाना चाहिए और सभी धार्मिक पर्सनल कानूनों की आधिकारिक या सरकारी मान्यता को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। दूसरा, इस समान नागरिक संहिता को (चाहे वह कितनी ही जनवादी व सेक्युलर क्यों न हो) आप किसी नागरिक पर उसके निजी मसलों के सन्दर्भ में थोप नहीं सकते हैं, इसलिए इस नागरिक संहिता को भी जबरन किसी पर भी नहीं थोपा जाना चाहिए। तीसरी बात, किसी धार्मिक कानून या परम्परा के तहत यदि दो नागरिक किसी संविदा या करारनामे में जुड़ते हैं या उससे अलग होते हैं, तो भी यदि कोई एक नागरिक भी न्याय हेतु राज्यसत्ता की न्यायपालिका के पास आता है तो उसे न्याय एकसमान नागरिक संहिता के तहत ही मिलेगा,** अन्यथा वह अपने धर्मगुरुओं या धार्मिक संस्थाओं के पास जा सकता है। ये इस मसले पर सर्वहारा उसूल हैं, जिन्हें हमें समझना चाहिए।

अब इन उसूलों की रोशनी में हम यह समझने का प्रयास करते हैं कि भाजपा की मोदी सरकार क्या कर रही है और उसके वास्तविक इरादे क्या हैं।

मोदी सरकार उत्तर-पूर्व के तमाम आदिवासी व ईसाई समुदायों को यह भरोसा दिला रही है कि उनके जनजातीय पारम्परिक कानूनों व ईसाई पर्सनल लॉ पर समान नागरिक संहिता लागू नहीं की जायेगी। इसी प्रकार इस बात के कयास भी लगाये जा रहे हैं कि कुछ अन्य धार्मिक समुदायों को भी इस भावी समान नागरिक संहिता से छूट दे दी जायेगी। **तो इसका अर्थ क्या हुआ?** इसका अर्थ यह है कि यह एकसमान नागरिक संहिता केवल मुसलमान आबादी पर थोपने के लिए है। यह सच है कि मुसलमान कट्टरपंथी धार्मिक गुरू व संस्थाएँ *आम तौर पर* समान नागरिक संहिता का विरोध करती हैं और अपने पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित होकर मुस्लिम पर्सनल लॉ में किसी भी प्रकार के सुधार को रोक देती हैं। दूसरी तरफ़, स्वयं मुसलमान समाज के भीतर से कई लोग एक जनवादी व सेक्युलर एकसमान नागरिक संहिता की माँग करते हैं और साथ ही कई मुस्लिम पर्सनल लॉ में बड़े सुधार करके उसे स्त्रियों के प्रति समानतापूर्ण बनाने की माँग उठाते हैं। ऐसे सभी मुसलमानों ने मोदी सरकार की मंशा पर सन्देह प्रकट किया है और स्पष्ट किया है कि मोदी सरकार समान नागरिक संहिता के नाम पर हिन्दू पर्सनल लॉ को केवल मुसलमानों के ऊपर थोपने का षड्यन्त्र कर रही है, ताकि साम्प्रदायिक तनाव को भड़काया जा सके। वैसे भी यदि एक भी समुदाय को समान नागरिक संहिता को न मानने की छूट देने के लिए भाजपा की मोदी सरकार तैयार है, तो सब पर बाध्यताकारी तौर पर लागू होने वाली जिस समान नागरिक संहिता की भाजपा बात कर रही है, वह तो रही ही नहीं! फिर तो वह सिर्फ मुसलमान आबादी पर समान नागरिक संहिता को जबरन थोपकर साम्प्रदायिक तनाव को भड़काने का एक उपकरण हो गया। यह भी स्पष्ट है कि भाजपा जो तथाकथित समान नागरिक संहिता लायेगी उसमें हिन्दू अविभाजित परिवार जैसे प्रावधानों को समाप्त नहीं किया जायेगा जिसके ज़रिये धनी हिन्दू सम्पत्तिशाली तबके हज़ारों करोड़ रुपये टैक्स में बचाते हैं।

और भाजपा ठीक इसी मंशा से समान नागरिक संहिता को लेकर हल्ला कर रही है, ताकि साम्प्रदायिक तनाव को गरमाया जा सके और 2024 में लोकसभा चुनावों में इस साम्प्रदायिक तनाव का फ़ायदा उठाकर सत्ता में पहुँचा जा सके। महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के मसले पर भाजपा सरकार पूरी तरह से बेनक़ाब हो चुकी है और जनता उसकी असलियत को हर बीतते दिन के साथ समझती जा रही है। आज टमाटर, अन्य सब्ज़ियों व खाद्य पदार्थों की क़ीमतों ने आम आदमी की जेब पर डाका डाला हुआ है। सारे भ्रष्टाचारी भाजपा में शामिल हो रहे हैं। महाराष्ट्र में जिस व्यक्ति को नरेन्द्र मोदी ने मध्यप्रदेश में 5 दिन पहले के अपने भाषण में सबसे बड़े भ्रष्टाचारी की संज्ञा दी थी, वह आज भाजपा की गठबन्धन सरकार में महाराष्ट्र में उपमुख्यमन्त्री बन चुका है, यानी अजित पवार! यानी, भाजपा में जाओ और अपने ऊपर से भ्रष्टाचार के केसों को हटवाओ। विपक्ष के नेताओं को इसी प्रकार डराकर भाजपा अपने 2024 में हारने के डर को दूर करने की कोशिशों में लगी हुई है। इस समय तेजस्वी यादव व राजद के लोगों को नौकरी के लिए ज़मीन मसले में डराया जा रहा है। बेशक़, सारी ही पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों में भ्रष्टाचार के ऐसे मसले हो सकते हैं और हैं हीं। लेकिन अगर कोई पार्टी भ्रष्टाचार में सबसे आगे है, तो वह भाजपा ही है। क्या हम राफेल घोटाले, व्यापम घोटाले और एनपीए घोटाले को भूल गये हैं? ये तो आज़ाद भारत के इतिहास के सबसे बड़े घोटाले हैं!

अब चूँकि भाजपा के पास 10 साल के काम के आधार पर वोट माँगने के लिए कुछ नहीं है, इसलिए वह बस तीन काम कर रही है: पहला, पूँजीवादी संसद के भीतर मौजूद विपक्ष को डरा-धमकाकर तोड़ना ताकि उसके खिलाफ़ विपक्ष साझे उम्मीदवारों को न उतार सके; दूसरा, देश में साम्प्रदायिक तनाव की ज्वाला को लव जिहाद, गोरक्षा और समान नागरिक संहिता के नाम पर भड़काते रहना, और तीसरा, पाकिस्तान और चीन के नाम पर अन्धराष्ट्रवाद की हवा बनाये रखना ताकि कुछ भी काम न आये, तो कोई नया पुलवामा काम आ जाये। संयोगवश ऐसी कोई घटना घट जाये तो अचरज मत करियेगा।

यही सच्चाई है और इसे हमें समझने की आवश्यकता है।

तमाम संशोधनवादी पार्टियाँ जैसे कि माकपा, भाकपा-माले व भाकपा समान नागरिक संहिता के विचार को ही आम तौर पर ख़ारिज कर रही हैं और कह रही हैं कि भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में यह लागू नहीं की जा सकती है। निश्चित तौर पर, सर्वहारा वर्ग भी किसी समान नागरिक संहिता को किसी नागरिक पर जबरन थोपेगा नहीं, क्योंकि यह जनवाद के उसूलों के खिलाफ है। लेकिन वह निश्चित ही एक समान नागरिक संहिता के निर्माण का समर्थन करेगा, जो सही मायने में जनवाद और सेक्युलरिज़्म पर आधारित हो और जो किसी पर थोपी न जाय। साथ ही, वह हर नागरिक के अपने समुदाय या धर्म की परम्परा या कानून पर निजी मसलों में अमल करने के अधिकार का भी खण्डन नहीं करेगा और केवल तभी इन निजी मसलों में हस्तक्षेप की हिमायत करेगा, जबकि कोई नागरिक न्याय हेतु राज्यसत्ता के पास आता है और तब भी राज्यसत्ता समान नागरिक संहिता के मातहत ही न्याय दे सकती है। **लेकिन मज़दूर वर्ग की ग़द्दार इन संशोधनवादी पार्टियों ने अल्पसंख्यक आबादी के मौजूद धार्मिक कट्टरपंथी संस्थाओं व गुरुओं का तुष्टीकरण करने के नज़रिये से समान नागरिक संहिता का निरपेक्ष रूप से विरोध किया और पर्सनल लॉ में सुधार मात्र की माँग की है। विशिष्ट परिस्थितियों में, ऐसी माँग एक लघुकालिक माँग हो सकती थी लेकिन जिस प्रकार आम तौर पर संशोधनवादी पार्टियाँ लघुकालिक माँगों को दूरगामी**

(पेज 10 पर जारी)

समान नागरिक संहिता के पीछे मोदी सरकार की असली मंशा है साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण जिसकी फसल 2024 के लोकसभा चुनावों में काटी जा सके!

(पेज 9 से आगे)

लक्ष्य बनाकर पेश करती हैं और मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना को भ्रष्ट और कुन्द करती हैं, उसी प्रकार समान नागरिक संहिता के मसले पर भी भारत की विविधता का हवाला देकर उसका निरपेक्ष विरोध करके वे ऐसा ही कर रही हैं।

विविधता का हवाला देकर किसी भी प्रतिक्रियावादी चीज़ को सही ठहराया जा सकता है। जातिवाद को, ब्राह्मणवाद को, पितृसत्तात्मक मूल्यों को और साम्प्रदायिकता तक को विविधता का हवाला देकर सही ठहराया जा सकता है। मूलत: यह तर्क बहुसंस्कृतिवाद का तर्क है जो सभी समुदायों को एक-दूसरे की पारम्परिक प्रथाओं को बर्दाशत करने या उनके प्रति सहिष्णुता दिखलाने की हिदायत देता है और इस प्रकार समुदायों के बीच की दीवारों को बनाये रखता है और उनके बीच वर्गीय आधार पर एकजुटता बनाने की प्रक्रिया को भारी नुकसान पहुँचाता है। ऐसी कोई परस्पर सहिष्णुता और बर्दाश्त करने की हिदायतें काम नहीं आतीं क्योंकि हर धर्म की प्रतिक्रियावादी, जनविरोधी और पितृसत्तात्मक व जातिवादी परम्पराओं में ही आपस में अन्तरविरोध और टकराव है। नतीजतन, इनको लेकर स्वयं समुदायों के बीच टकराव पैदा करना हमेशा ही फ़िरकापरस्त ताक़तों के लिए आसान होता है। इसलिए सर्वहारा वर्ग का सिद्धान्त सहिष्णुता और बर्दाश्त करने की बुर्जुआ उदारतावादी हिदायत देना नहीं है, बल्कि वैज्ञानिकता और तार्किकता के आधार पर हर ग़लत परम्परा या प्रथा की आलोचना करना और उसके आधार पर सर्वहारा वर्ग के नज़रिये से वर्गीय एकजुटता स्थापित करना है। लेकिन संशोधनवादियों में इस बात का साहस नहीं होता है और वे हमेशा प्रतिक्रियावादी और जनविरोधी परम्पराओं के सामने भी घुटना टेकने व उनसे समझौते करने को तैयार रहते हैं, जो कि अन्तत: आम तौर पर मेहनतकश जनता को ही नुकसान पहुँचाता है।

सर्वहारा वर्ग हमेशा ही समान नागरिक संहिता का समर्थन करता है, जो जनवादी, सेक्युलर व समानतापूर्ण उसूलों पर आधारित हो। वह हमेशा ही ऐसी समान नागरिक संहिता को भी जबरन किसी नागरिक पर थोपे जाने का विरोध करता है, जैसा कि भाजपा की मोदी सरकार मुसलमान आबादी के साथ करना चाहती है। सर्वहारा वर्ग हमेशा हर नागरिक की अपने धर्म या समुदाय की परम्पराओं के अनुसार अपने निजी मसलों के निपटारे की आज़ादी का सम्मान करता है, चाहे वह इन परम्पराओं से सहमत हो या न हो। वह मानता है कि एक सेक्युलर व जनवादी राज्यसत्ता को निजी मसले के निपटारे या उसमें न्याय की गुहार लगाने वाले किसी भी नागरिक को केवल और केवल समान नागरिक संहिता के आधार पर ही न्याय दे सकती है न कि किसी धार्मिक पर्सनल लॉ के आधार पर जिसको वह मान्यता दे ही नहीं सकती है। यह सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी नज़रिया है, जो आम तौर पर जनवाद, सच्चे सेक्युलरिज़्म और समानता के सिद्धान्तों पर खरा उतरता है और आम मेहनतकश जनता के भविष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

आम मेहनतकश जनता में पुराने सड़ चुके धार्मिक मूल्य-मान्यताओं और प्रतिक्रियावादी परम्पराओं के प्रति एक सही दृष्टिकोण विकसित हो, वे उनका परित्याग कर मानवतावाद, जनवाद, सेक्युलरिज़्म व समानता के उसूलों को अपने निजी जीवन के मसलों में भी अपनायें, यह मसला वास्तव में कानून पारित करने का मसला है ही नहीं। आप समानता या सेक्युलरिज़्म या जनवाद को भी गैर-जनवादी तरीके से किसी के ऊपर कानून बनाकर नहीं थोप सकते हैं। ऐसे में, यह मसला एक सामाजिक आन्दोलन का मसला बनता है जिस पर सतत् प्रचार करके जनता का स्तरोन्नयन करना क्रान्तिकारी सर्वहारा आन्दोलन का एक दूरगामी कार्यभार बनता है, जिस पर तात्कालित तौर पर ही अमल की शुरुआत हो जानी चाहिए। साथ ही, यह भी समझ लेना चाहिए कि समाजवाद और मज़दूर सत्ता के स्थापित होने के बाद भी कई सांस्कृतिक क्रान्तियों और समाजवादी शिक्षा व्यवस्था में कई पीढ़ियों के पलने-बढ़ने, सामाजिक व आर्थिक असुरक्षा व अनिश्चितता के समाप्त होने के बाद ही जनता के बीच एक जनवादी और समानतामूलक तथा तार्किक व वैज्ञानिक चेतना पैदा हो सकती है। इसके लिए क्रान्ति के पहले भी राजनीतिक व सांस्कृतिक प्रचार हमारे आन्दोलन का एक ज़रूरी कार्यभार है। **लेकिन आप समूचे समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना के स्तरोन्नयन को कानूनों व आज्ञप्तियों को पारित करने का मसला नहीं बना सकते हैं।**

इसलिए आज राजनीतिक तौर पर हमें उन्हीं उसूलों पर अमल करना चाहिए जिनकी हमने ऊपर चर्चा की है, जो जनवाद, सेक्युलरिज़्म और समानता पर आधारित हैं और जो हमें इस मसले पर एक सही सर्वहारा लाइन व कार्यक्रम अपनाने के योग्य बनाते हैं।

लगातार घटती हुई सरकारी नौकरियाँ – 2010 से अब तक सबसे कम

(पेज 1 से आगे)

प्रतिशत पद होते हैं। सबसे अधिक नौकरियाँ देने वाला विभाग रेलवे है जिसमें लगभग 3 दशक पहले 18 लाख से अधिक कर्मचारी होते थे। लेकिन 1 मार्च 2022 को इसके कुल स्वीकृत पदों की संख्या थी 15.07 लाख जबकि कार्यरत कर्मचारी थे मात्र 11.98 लाख। यानी तीन लाख से ज़्यादा पद ख़ाली पड़े थे। इनमें बड़ी संख्या ऐसे पदों की है जो रेलों के संचालन और सुरक्षा से जुड़े हैं। जून में उड़ीसा में हुई भयंकर रेल दुर्घटना और आये दिन होने वाली रेल दुर्घटनाओं के लिए कर्मचारियों की भारी कमी एक बड़ा कारण है।

इसके बावजूद न सिर्फ़ ख़ाली पदों पर भर्ती नहीं की जा रही है बल्कि पदों को ही कम किया जा रहा है। रक्षा मंत्रालय में कुल स्वीकृत नागरिक पदों की संख्या 5.77 लाख है जिसमें से 2.32 लाख पद ख़ाली पड़े हैं। गृह मंत्रालय के 10.90 लाख स्वीकृत पदों में से 1.20 लाख पद ख़ाली पड़े हैं। डाक विभाग में कुल स्वीकृत पद 2.64 लाख हैं जिसमें से एक लाख से ज़्यादा पद ख़ाली हैं। राजस्व विभाग में 1.78 लाख स्वीकृत पद हैं जिनमें से 74000 पद ख़ाली पड़े हैं। नरेंद्र मोदी ने पिछले अक्टूबर में 10 लाख सरकारी नौकरियाँ देने की घोषणा की थी लेकिन कहने की ज़रूरत नहीं कि यह भी इस सरकार की तमाम फ़र्ज़ी घोषणाओं में से एक थी। असलियत यह है कि सभी विभागों में लगातार नियमित सरकारी कर्मचारियों की कटौती करके उनका काम बाहरी आउटसोर्सिंग एजेंसियों को दिया जा रहा है। हर विभाग में ठेके पर बेहद कम वेतन देकर काम पर रखे जाने वाले कर्मचारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। राज्य सरकारों की हालत इससे भी बुरी है। शिक्षकों और डॉक्टरों जैसे बुनियादी महत्व के पदों सहित हर विभाग में लाखों पद ख़ाली पड़े हैं जबकि जनता ज़रूरी सेवाओं के अभाव से जूझ रही है और बेरोज़गार नौजवान रोज़गार की तलाश में भटक रहे हैं। उल्टे सरकारें बेरोज़गारों से ही भारी कमाई कर रही हैं। इसी वर्ष मार्च में मध्य प्रदेश विधानसभा में सरकार ने जानकारी दी कि पिछले सात वर्षों में प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले एक करोड़ 24 लाख युवाओं से सरकार ने 424 करोड़ रुपये फ़ीस के रूप में वसूले। अगर सभी राज्यों और केन्द्र सरकार द्वारा वसूली गयी रकम का हिसाब लगाया जाये तो वह लाखों करोड़ में होगी।

ऐसे में नौजवानों को एकजुट होकर रोज़गार के सवाल पर एक बड़ा आन्दोलन खड़ा करना होगा। पिछले मार्च से देश के कई राज्यों में चलायी जा रही 'भगतसिंह जनअधिकार यात्रा' ने रोज़गार के सवाल को ख़ास तौर पर उठाया है। इसके माँगपत्रक में कहा गया है कि जिन पदों पर परीक्षाएँ हो चुकी हैं उनमें पास होने वाले उम्मीदवारों को तत्काल नियुक्तियाँ दी जायें। रिक्तियों की घोषणा से लेकर नियुक्ति पत्र देने की समय सीमा तय करके उसे सख़्ती से लागू किया जाये। परीक्षा परिणाम घोषित होने के छह माह में नियुक्ति पत्र देना अनिवार्य किया जाये। जिन पदों पर भर्ती के लिए परीक्षाएँ आयोजित नहीं की गयी हैं, उन्हें तत्काल आयोजित किया जाये।

इसके अलावा सभी राजकीय व केन्द्रीय विभागों में ख़ाली पड़े लाखों पदों को भरने की प्रक्रिया जल्द से जल्द शुरू की जाये। नियमित प्रकृति के कामों में ठेका प्रथा पर रोक लगायी जाये, सरकारी विभागों व निजी उपक्रमों में नियमित काम कर रहे सभी कर्मचारियों को तत्काल स्थायी किया जाये और ऐसे सभी ख़ाली पदों पर स्थायी भर्ती की जाये।

इसने यह माँग भी की है कि देश में शहरी और ग्रामीण बेरोज़गारों के पंजीकरण की व्यवस्था की जाये और रोज़गार नहीं मिलने तक कम से कम 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। इसे सुनिश्चित करने के लिए सरकार 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून (बसनेगा)' पारित करे। तब तक 'मनरेगा' के तहत सालभर के रोज़गार और काम पर कम-से-कम न्यूनतम मज़दूरी का कानूनी प्रावधान किया जाये। केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे कानून को पारित किये जाने तक, राज्य सरकारें प्रदेश के स्तर पर ऐसा रोज़गार गारण्टी कानून बनायें।

बेरोज़गार युवकों से हर वर्ष की जाने वाली हज़ारों करोड़ की कमाई बन्द करने, नौकरियों के लिए आवेदन के भारी शुल्कों को ख़त्म करने और साक्षात्कार तथा परीक्षा के लिए यात्रा को निःशुल्क करने की भी माँग की गयी है।

माँगपत्रक में कहा गया है कि देश में वास्तविक विकास के लिए ज़रूरी है कि शिक्षा, चिकित्सा, बुनियादी ढाँचे के निर्माण, आवास आदि की सुविधाओं के विस्तार के लिए नयी रिक्तियाँ निकाली जाएँ और उन पर भर्तियाँ की जायें।

फ़िलहाल मोदी सरकार इसके ठीक उल्टी चाल चल रही है। ऐसे में हमें भगतसिंह की इस बात को याद करना होगा : "अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित रखती है, तो उस देश के नौजवानों का अधिकार ही नहीं बल्कि कर्तव्य है कि ऐसी सरकारें को बदल दें या ध्वस्त कर दें।"

यूक्रेन युद्ध: तबाही और बर्बादी के 500 दिन

● आनन्द

रूस और अमेरिका के नेतृत्व वाले नाटो के बीच यूक्रेन में जारी साम्राज्यवादी छद्म युद्ध के 500 दिन बीत चुके हैं। इन 500 दिनों में यूक्रेन को बेइन्तहा तबाही और बेहिसाब बर्बादी का सामना करना पड़ा है। साम्राज्यवादी लुटेरों की आपसी होड़ के नतीजे में होने वाले इस युद्ध का प्रकोप यूक्रेन की आम जनता को प्रत्यक्ष तौर पर सहना पड़ रहा है। अब तक इस युद्ध के दौरान लगभग दस हज़ार यूक्रेनी नागरिक मारे जा चुके हैं, लाखों लोगों को देश छोड़कर भागना पड़ा है और यूक्रेन का बुनियादी ढाँचा तहस-नहस हो चुका है। जो यूक्रेनी नागरिक अभी भी उस देश के भीतर मौजूद हैं उनके लिए युद्ध का एक-एक दिन बहुत भारी पड़ रहा है। युद्ध की वजह से जान-माल के ख़तरे के अलावा उन्हें भीषण महँगाई व बुनियादी सुविधाओं की भारी किल्लत का भी सामना करना पड़ रहा है। इस भयानक परिस्थिति का सबसे त्रासद पहलू यह है कि इस साम्राज्यवादी युद्ध ने यूक्रेन को जिस काली रात में झोंक दिया है उसकी सुबह नहीं नज़र आ रही है क्योंकि इस युद्ध में लम्बे समय से एक गतिरोध की स्थिति बनी हुई है और युद्धविराम या कूटनीतिक तरीक़े से युद्ध की समाप्ति के आसार दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहे हैं।

युद्ध की मौजूदा स्थिति

पिछले साल 24 फ़रवरी को यूक्रेन पर हमला करने के बाद शुरू में रूस की योजना यूक्रेन की राजधानी कीव व उसके दूसरे प्रमुख शहर खारकीव पर क़ब्ज़ा करने की थी ताकि पूर्वी यूक्रेन के दोनबास क्षेत्र का रूस में विलय करने और यूक्रेन द्वारा नाटो (उत्तर अटलांटिक सन्धि संगठन) की सदस्यता पाने की आकांक्षा को ख़त्म करने के लिए यूक्रेन के राष्ट्रपति ज़ेलेंस्की पर दबाव डाला जा सके। परन्तु अमेरिका के नेतृत्व में नाटो द्वारा यूक्रेन को दी गयी सैन्य मदद की वजह से रूस अपनी इस योजना में कामयाब नहीं हो सका। यह ग़ौरतलब है कि रूस-चीन धुरी की चुनौती से निपटने के लिए नाटो ने लगातार पूर्व की ओर अपने विस्तार को जारी रखा था जो कि किसी खुले भावी साम्राज्यवादी युद्ध की सूरत में रूस के लिए संकट पैदा कर सकता था और चीन-रूस धुरी के लिए एक चिन्ता की बात थी। उभरती चीन-रूस साम्राज्यवादी धुरी के लिए साम्राज्यवादी नाटो के पूरब की ओर विस्तार को रोकना आवश्यक था। यूक्रेन की दक्षिणपन्थी सरकार अमेरिकी साम्राज्यवाद के हाथों में खेल रही थी और यही मसला रूसी साम्राज्यवाद और अमेरिकी साम्राज्यवाद के बीच अन्तरविरोध का मूल मसला बना। यही यूक्रेन युद्ध के शुरुआत का मूल कारण था – अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा, जिसकी कीमत यूक्रेनी जनता चुका रही है।

एक साल से भी ज़्यादा समय बीतने के बाद आज हालत यह है कि युद्ध में गतिरोध की स्थिति आ चुकी है और कोई भी पक्ष जीत की ओर आगे बढ़ता हुआ नहीं दिख रहा है। राजधानी कीव और खारकीव पर क़ब्ज़ा करने में विफल होने के बाद इस समय रूसी सेना यूक्रेन के पूर्व में द्नीपर नदी के पूर्वी तट पर स्थित दोनबास क्षेत्र पर अपना क़ब्ज़ा जमाने की कोशिशों में लगी है। अभी हाल ही में उसने इस क्षेत्र के दोनेत्ज़ प्रान्त के प्रमुख शहर बखमुत पर क़ब्ज़ा कर लिया। हालाँकि उसके बाद यूक्रेन ने भी जवाबी कार्रवाई कर दी है और यह लेख लिखे जाने तक बखमुत को वापस यूक्रेन के क़ब्ज़े में लेने के लिए जंग जारी है। इस प्रकार इस समय लुहांस्क और दोनेत्ज़ सहित पूर्वी यूक्रेन के दोनबास क्षेत्र के कई हिस्से रूस के क़ब्ज़े में हैं। ग़ौरतलब है कि दक्षिणी यूक्रेन में स्थित क्रीमिया 2014 से ही रूस के क़ब्ज़े में है। सैन्य ताक़त के अतिरिक्त इन क्षेत्रों में रूसी क़ब्ज़े की एक अन्य वजह यह है कि यहाँ की बहुसंख्यक आबादी रूसी मूल की है, जिनका भयंकर दमन यूक्रेन की दक्षिणपन्थी अर्द्धफासीवादी सरकार लगातार कर रही थी। इस प्रकार इस समय यूक्रेन की जंग मुख्य रूप से उस देश के पूर्वी व दक्षिणी हिस्से में लड़ी जा रही है। पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों की मदद से यूक्रेन पश्चिमी व दक्षिणी यूक्रेन में एक बड़े अभियान की तैयारी कर रहा है।

रूस की निजी सेना वैगनर ग्रुप की सनसनीख़ेज़ बग़ावत

जून महीने के अन्तिम सप्ताहान्त के दौरान रूस में एक नाटकीय घटनाक्रम देखने को आया जब रूस की ओर से यूक्रेन में लड़ रही निजी सेना वैगनर ग्रुप ने बग़ावत का ऐलान कर दिया। ग़ौरतलब है कि इस निजी सेना का मुखिया येवगेनी प्रिगोज़िन रूसी राष्ट्रपति पुतिन का बेहद क़रीबी माना जाता था। वैगनर ग्रुप ने पूर्वी यूक्रेन के बखमुत पर क़ब्ज़ा करने में प्रमुख भूमिका निभायी थी। परन्तु गत 23 जून को अचानक प्रिगोजिन ने बग़ावत का ऐलान करते हुए रूसी शहर रोस्तोव-ऑन-दोन पर कब्ज़ा करने का दावा किया। उसके बाद उसने यह घोषणा की कि वह अपने 25 हज़ार लड़ाकों के साथ राजधानी मॉस्को की ओर मार्च करने वाला है। उसने यहाँ तक कहा कि यूक्रेन युद्ध ग़ैर-ज़रूरी था क्योंकि यूक्रेन की ओर से कोई उकसावे की हरकत नहीं की गयी थी। उसने यह भी कहा कि यह युद्ध रूस की सत्ता में बैठे कुछ जोकरों की वजह से थोपा गया था। उसका इशारा रूस के रक्षामंत्री शोउगु और रूसी सेना के चीफ़ ऑफ़ स्टॉफ वालेरी गेरासिमोव की ओर था और उसकी मंशा उन्हें पदच्युत कराने की थी।

पुतिन ने पहले तो इस बग़ावत को देशद्रोह की संज्ञा दी और इससे सख़्ती से निपटने की बात कही। परन्तु अगले ही दिन अचानक प्रिगोज़िन का पुतिन के क़रीबी बेलारूस के राष्ट्रपति लुकाशेंको के साथ समझौता हो गया जिसके बाद प्रिगोज़िन ने मॉस्को की ओर मार्च करने का इरादा बदल दिया। रूस ने प्रिगोज़िन के ख़िलाफ़ आपराधिक मुक़दमा दर्ज करके कोई कार्रवाई करने की बजाय उसे बेलारूस में जाने दिया। इस प्रकार यह बग़ावत जितने सनसनीख़ेज़ तरीक़े से शुरू हुई थी उतने ही सनसनीख़ेज़ तरीक़े से अचानक ख़त्म भी हो गयी। परन्तु इस अल्पकालिक बग़ावत से इतना तो स्पष्ट है कि रूसी साम्राज्यवादी सत्ता के भीतर यूक्रेन युद्ध को लेकर असन्तोष पनपने की शुरुआत हो चुकी है। फ़िलहाल पुतिन ने प्रिगोज़िन के नेतृत्व वाले वैगनर ग्रुप की बग़ावत को ख़त्म करने में भले ही कामयाबी पा ली हो, परन्तु जैसे-जैसे यूक्रेन युद्ध लम्बा खिंचता जाएगा (जिसके आसार ज़्यादा हैं) रूसी समाज में इस युद्ध को लेकर जो समर्थन है वह कम होता जायेगा और उसका असर रूसी सत्ता के भीतर अन्तरविरोध बढ़ने के रूप में सामने आयेगा। ऐसी सूरत में पुतिन का सत्ता में बने रहना ज़्यादा से ज़्यादा मुश्किल होता जायेगा। ज़ाहिर है, यह एक सम्भावना मात्र है और इस सम्भावना से इतर कई अन्य सम्भावनाएँ भी मौजूद हैं। यह अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा अन्ततः कौन-सा मोड़ लेगी, यह आने वाला वक़्त ही बतायेगा। लेकिन इतना स्पष्ट है कि इसकी कीमत यूक्रेनी जनता अपनी जान-माल से चुकायेगी और साथ ही आम रूसी सैनिक व जनता भी चुकायेंगे क्योंकि हर ऐसा युद्ध साम्राज्यवादी देशों के भीतर भी हमेशा ही अन्धराष्ट्रवाद और दक्षिणपन्थ की लहर लेकर आता है, जिसका नतीजा होता है युद्ध के नाम पर हर प्रकार के जनप्रतिरोध का बर्बर दमन। पुतिन की दक्षिणपन्थी सरकार रूस में यह कर भी रही है।

इस विनाशकारी युद्ध के लिए ज़िम्मेदार कौन?

पश्चिमी साम्राज्यवादी मीडिया में यूक्रेन युद्ध के लिए केवल एक व्यक्ति यानी पुतिन की सनक को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। साथ ही साथ इस युद्ध की परिस्थिति तैयार करने में अमेरिका व पश्चिमी यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों की भूमिका को सिरे से ग़ायब कर दिया जाता है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस युद्ध से होने वाली भीषण तबाही के लिए व्लादिमीर पुतिन के नेतृत्व वाला रूसी साम्राज्यवाद प्रत्यक्ष और औपचारिक तौर पर ज़िम्मेदार है क्योंकि रूसी सेना ने ही गत वर्ष फ़रवरी में यूक्रेन पर हमला किया था। परन्तु इस युद्ध के लिए पश्चिमी साम्राज्यवादी ताक़तों को वही लोग दोषमुक्त कर सकते हैं जो या तो इन साम्राज्यवादी ताक़तों के एजेण्ट हों या फिर जिन्हें हाल के इतिहास व इन साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा पोषित सैन्य गठजोड़ नाटो की विनाशकारी भूमिका का कोई अन्दाज़ा न हो।

पूर्व सोवियत यूनियन के पतन के बाद के इतिहास पर एक सरसरी नज़र डालने भर से यह दिन के उजाले की तरह साफ़ हो जाता है कि यूक्रेन पर हमला करने की पहल भले ही रूस ने की हो परन्तु हालात को युद्ध के मुकाम तक पहुँचाने में पश्चिमी साम्राज्यवादी ताक़तें किसी भी मायने में कम ज़िम्मेदार नहीं हैं, बल्कि मुख्य ज़िम्मेदारी पश्चिमी साम्राज्यवाद की ही बनती है। नाटो ने अपने वायदे को तोड़ते हुए पूर्व सोवियत यूनियन के पतन और शीतयुद्ध के ख़त्म के होने के बाद भी यूरोप में पूर्व की ओर अपना विस्तार जारी रखा और उसके बाद 15 देशों को नाटो में शामिल किया गया है। अभी इसी वर्ष जहाँ एक ओर यूक्रेन में भीषण युद्ध जारी था वहीं दूसरी ओर नाटो में फ़िनलैण्ड को भी शामिल कर लिया गया है और स्वीडन को भी शामिल करने की पूरी तैयारी हो चुकी है। इसी प्रकार अमेरिका ने एस्तोनिया, पोलैण्ड व बुल्गारिया जैसे देशों में अपने सैन्य अड्डे बनाये हैं जो रूसी सीमा से बहुत नज़दीक स्थित हैं। इसके अलावा अमेरिका ने यूक्रेन सहित पूर्व सोवियत संघ का हिस्सा रहे कई देशों के भीतर सत्ता परिवर्तन के तमाम प्रयास किये हैं। रूस को उकसाने वाले ये तमाम घटनाक्रम इस सच्चाई को बताते हैं कि यूक्रेन युद्ध के लिए अमेरिका के नेतृत्व वाली पश्चिमी साम्राज्यवादी ताक़तें रूस से किसी भी मायने में कम दोषी नहीं हैं।

पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों की ज़िम्मेदारी इससे भी प्रमाणित हो जाती है कि अमेरिका, ब्रिटेन व जर्मनी सहित नाटो के घटक देशों ने मौजूदा युद्ध में यूक्रेन को मिसाइल, टैंक सहित तमाम हथियारों के साथ ही साथ प्रशिक्षण व ख़ुफ़िया जानकारी जैसी अहम मदद मुहैया करायी है जिनके बिना यूक्रेन इस युद्ध में एक दिन भी टिक नहीं सकता था। यूक्रेन का राष्ट्रपति वोलोदिमीर ज़ेलेंस्की युद्ध की शुरुआत से ही ज़्यादा से ज़्यादा हथियारों की आपूर्ति सुनिश्चित कराने के लिए इन पश्चिमी देशों की राजधानियों के चक्कर लगाता रहा है। पश्चिमी मीडिया भी उसे युद्ध का नायक घोषित करती रही है, जबकि सच्चाई यह है कि वह इस अन्तरसाम्राज्यवादी युद्ध में पश्चिमी साम्राज्यवादी धड़े के प्यादे की भूमिका निभा रहा है। अमेरिका व अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों द्वारा अब तक दी गयी अरबों डॉलर की सैन्य मदद भी ज़ेलेन्स्की को नाकाफ़ी लग रही है और वह साम्राज्यवादियों से और ज़्यादा मदद की माँग कर रहा है। उसकी माँग एफ़ 15 और एफ़ 16 जैसे फ़ाइटर जेट की भी है, लेकिन पश्चिमी देशों में अभी उसे फ़ाइटर जेट देने के लिए एक राय नहीं बन पा रही है क्योंकि उन्हें डर है कि युद्ध का दायरा यूक्रेन की सीमा से आगे बढ़कर उनकी सीमाओं के भीतर भी जा सकता है।

नाभिकीय युद्ध का बढ़ता ख़तरा

ख़तरा सिर्फ़ युद्ध के यूक्रेन की सीमा से बाहर फैलने का ही नहीं है; इस बात की सम्भावना से पूरी तरह इन्कार नहीं किया जा सकता है कि साम्राज्यवादियों के बीच की यह अन्धी होड़ भविष्य के किसी मोड़ पर नाभिकीय युद्ध का रूप ले ले। ग़ौरतलब है कि हाल ही में रूस ने अपने नाभिकीय हथियारों को बेलारूस में नाटो देशों की सीमाओं की ओर स्थापित करने की घोषणा की है। उधर ब्रिटेन ने भी अपने नाभिकीय हथियारों को अपग्रेड करने का फैसला किया है। एक अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा संस्था स्टॉकहोम इण्टरनेशनल पीस रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने अपनी हालिया रिपोर्ट में बताया है कि नाभिकीय हथियार रखने वाले नौ देशों में नाभिकीय आधुनिकीकरण और विकास कार्यक्रमों की वजह से दुनिया भर में नाभिकीय हथियारों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। यह भयावह सच्चाई हमें आगाह कर रही है कि पूँजीवाद ने मानवता को इस मंज़िल पर पहुँचा दिया है कि भविष्य में नाभिकीय युद्ध के ख़तरे की वजह से समूची मानवता के सामने अस्तित्व का संकट आन पड़ा है। निश्चित ही, ऐसी किसी भयंकर आपदा दुनिया में भयंकर तबाही अवश्य ला सकती है, लेकिन वह पूँजीवाद के विरुद्ध जनता के वर्ग युद्ध को भी विकराल रूप में भड़का देगी। साम्राज्यवादी भी इस बात को समझते हैं और इस छोर तक जाने से डरते हैं। लेकिन युद्ध के हालात में इस प्रकार सम्भावना से पूर्ण रूप से इन्कार भी नहीं किया जा सकता है।

पूँजीवाद में जंग भी मुनाफ़े का सौदा

यूक्रेन युद्ध में आम लोगों की भले ही कितने भी बड़े पैमाने पर तबाही और बर्बादी हो रही हो, लेकिन मुनाफ़े की होड़ की वजह से पैदा होने वाला युद्ध अपने आप में अकूत मुनाफ़ा कूटने का ज़रिया भी बन रहा है। सबसे ज़्यादा फ़ायदा अमेरिका के मिलिटरी औद्योगिक कॉम्पलेक्स को हो रहा है। लॉकहीड मार्टिन, रेथियॉन और बोइंग जैसी अमेरिकी सैन्य कम्पनियाँ यूक्रेन

(पेज 5 पर जारी)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 12

अध्याय-11

मुद्रा का पूँजी में रूपान्तरण और पूँजीवादी माल उत्पादन

• अभिनव

अब तक हम साधारण माल उत्पादन का अध्ययन कर रहे थे। माल क्या होता है, उसके मूल्य का निर्धारण कैसे होता है, मूल्य-रूप का विकास किस प्रकार अपने उच्चतम स्तर यानी मुद्रा के विकास तक पहुँचता है, मालों का संचरण और मुद्रा का संचरण क्या होता है, और साधारण माल उत्पादन क्या होता है; ये सारी बातें समझे बिना हम पूँजीवादी माल उत्पादन और पूँजी के विषय में कोई समझदारी नहीं बना सकते हैं। साधारण माल उत्पादन वह होता है जिसमें अलग-अलग माल उत्पादक अपने-अपने मालों का उत्पादन करते हैं अन्य मालों के साथ बाज़ार में आम तौर पर मुद्रा के माध्यम से उनका विनिमय करते हैं। वे अपने माल का उत्पादन और विनिमय इसलिए करते हैं, ताकि बदले में अपनी आवश्यकता के माल (वस्तुएँ तथा सेवाएँ) प्राप्त कर सकें। अभी ये माल उत्पादक किसी अन्य व्यक्ति के श्रम का शोषण नहीं करते हैं और अपने व अपने पारिवारिक श्रम से ही उत्पादन करते हैं। यानी, अभी उजरती श्रम किसी विचारणीय पैमाने पर समाज में मौजूद नहीं होता है और न ही श्रमशक्ति व्यापक सामाजिक पैमाने पर माल में तब्दील हुई होती है।

फिर पूँजीवादी माल उत्पादन की शुरुआत कैसे होती है? यानी, ऐसा माल उत्पादन जिसमें मालों का उत्पादन उजरती मज़दूरों द्वारा किया जाता है, जो कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से वंचित होते हैं और उनके पास अपनी श्रमशक्ति के अलावा कुछ भी नहीं होता है, जबकि पूँजीपतियों का वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है और वह मज़दूरों की श्रमशक्ति को ख़रीदता है और उनके उजरती श्रम का शोषण करता है। उत्पादन हेतु श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों का साथ आना अनिवार्य है। इसलिए पूँजीपति मज़दूरों से उनकी श्रमशक्ति (यानी, दिये गये कार्यदिवस में काम करने की क्षमता) ख़रीदता है और उनके **उत्पादक उपभोग (productive consumption)**, यानी उत्पादन की प्रक्रिया में उसे ख़र्च करके, मालों का उत्पादन करता है। इस प्रकार उत्पादित मालों का मूल्य उनमें लगे उत्पादन के साधनों के मूल्य और श्रमशक्ति के मूल्य से ज़्यादा होता है क्योंकि किसी भी उजरती मज़दूर की श्रमशक्ति अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में उससे ज़्यादा मात्रा में श्रम देती है, जितना श्रम स्वयं उस श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होता है। यानी, श्रमशक्ति अपने उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया में अपने मूल्य (यानी अपने पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य) से ज़्यादा मूल्य पैदा करती है। उत्पादन के दौरान मज़दूर अपनी श्रमशक्ति के मूल्य से जितना ज़्यादा मूल्य पैदा करता है, उसे ही हम **अतिरिक्त मूल्य (surplus value)** या बेशी मूल्य कहते हैं और यही समूचे पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े का स्रोत होता है। इस पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। लेकिन अभी पहले यह समझना ज़रूरी है कि आखिर यह पूँजीवादी माल उत्पादन शुरू कैसे हुआ और वह अर्थव्यवस्था में प्रधान प्रवृत्ति कैसे बन गया? पूँजीवादी उत्पादन कोई अनादि अनन्त उत्पादन प्रणाली नहीं है। इसका एक इतिहास है। इसका एक आरम्भ है और *ठीक इसीलिए इसका एक अन्त भी है।* तो आइये पहले समझते हैं कि साधारण माल उत्पादन के दौर से पूँजीवादी माल उत्पादन का दौर कैसे शुरू हुआ।

साधारण माल उत्पादन से पूँजीवादी माल उत्पादन की ओर संक्रमण: एक संक्षिप्त व सामान्य ऐतिहासिक ब्यौरा

सबसे पहले तो यह जान लेना चाहिए माल उत्पादन की शुरुआत प्राक्-पूँजीवादी व्यवस्थाओं के गर्भ में ही हो गयी थी। वर्ग समाज के जन्म लेते ही, यानी दास समाज व अन्य आरम्भिक वर्ग समाजों के दौर से ही विनिमय हेतु उत्पादन की, यानी माल उत्पादन की शुरुआत हो चुकी थी। उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ समाज में श्रम विभाजन का विकास होता है और सामाजिक श्रम विभाजन के विकास के साथ ही उत्पादों के विनिमय और माल उत्पादन का आरम्भ हो जाता है। हम शुरुआती अध्याय में ही इसके बारे में पढ़ चुके हैं।

माल उत्पादन दास समाज व अन्य आरम्भिक वर्ग समाजों के गर्भ में ही पैदा हुआ और सामन्ती समाज के दौरान भी मौजूद रहा, लेकिन इन प्राक्-पूँजीवादी समाजों में वह उत्पादन का प्रधान रूप या पद्धति नहीं था। वह किसी अन्य उत्पादन पद्धति के मातहत था और उनमें सहयोजित था, जैसे कि दास उत्पादन पद्धति, सामन्ती उत्पादन पद्धति, आदि। श्रम के अधिकांश उत्पाद अभी माल नहीं बने थे। मसलन, सामन्ती समाज में श्रम के समस्त उत्पादों का बड़ा हिस्सा अभी माल नहीं बना होता है। भूदास व निर्भर किसान इस समय सामन्त की भूमि या सामन्त द्वारा आवण्टित भूमि पर खेती करते थे और उनके उत्पाद का एक बड़ा हिस्सा उनसे **बेशी उत्पाद (surplus product)** के तौर पर या उनका बेशी श्रम सामन्तों द्वारा हड़प लिया जाता था। यही सामन्ती लगान था जो कि श्रम, उत्पाद या मुद्रा के रूप में वसूल लिया जाता था। यह उत्पाद का विनिमय नहीं था, बल्कि आर्थिकेतर उत्पीड़न व ज़ोर-जबर्दस्ती द्वारा प्रत्यक्ष उत्पादकों से, यानी भूदासों व निर्भर किसानों से, उनके बेशी उत्पाद या कई बार बेशी उत्पाद से भी बड़े हिस्से को शासक वर्ग, यानी सामन्त वर्ग, द्वारा हड़प लिया जाना था। इस रूप में यह **आर्थिक शोषण (economic exploitation)** के ज़रिये नहीं, बल्कि मुख्यत: **आर्थिकेतर उत्पीड़न (extra-economic coercion)** द्वारा बेशी उत्पाद को हड़प लिया जाना था। यहाँ समतुल्यों का विनिमय, यानी समान मूल्यों वाले मालों का दो स्वतन्त्र उत्पादकों के बीच विनिमय नहीं हो रहा था, जैसा कि माल उत्पादन का आम नियम है।

लेकिन सामन्ती समाज में ही माल उत्पादन भी एक गौण प्रवृत्ति के तौर पर दस्तकारों, कारीगरों, तमाम प्रकार के सेवा-प्रदाताओं द्वारा जारी था और सामन्तवाद के पहले की दास व्यवस्था व अन्य वर्ग समाजों में भी माल उत्पादन एक विचारणीय गौण प्रवृत्ति के तौर पर मौजूद रहा था। सामन्ती समाज में उनके उत्पादों का भी एक हिस्सा कई बार सामन्तों द्वारा ट्रिब्यूट के तौर पर वसूला जाता था, लेकिन मुख्य तौर पर, वे अपने उत्पादों को मालों के रूप में बाज़ार में बेचा करते थे। साथ ही, गिल्ड व्यवस्था, जिसे मार्क्स ने 'उद्योग की सामन्ती व्यवस्था' कहा था, किसी भी माल उत्पादक को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं देती थी और श्रम की स्थितियाँ, उत्पादों की कीमत, आदि सभी गिल्ड व्यवस्था द्वारा संचालित होते थे। इस प्रकार माल उत्पादन सामन्ती स्थितियों के मातहत था और उनसे अवरुद्ध था। लेकिन माल उत्पादन निश्चय ही सामन्ती युग में हो रहा था।

ज़ाहिरा तौर पर, अगर माल उत्पादन होगा तो उसके विकास के साथ वाणिज्य और व्यापार भी विकसित होते हैं। सभी माल उत्पादक बाज़ार तक पहुँच नहीं रखते। एक अन्य वजह यह है कि यदि माल उत्पादक अपने माल को स्वयं बाज़ार में बेचते हैं तो वे अपने माल के बड़े हिस्से के बिकने तक अपना पुनरुत्पादन शुरू नहीं कर सकते। ज़ाहिर है, यह प्रक्रिया धीरे-धीरे होती है। ऐसे में, किसी एक व्यापारी द्वारा माल उत्पादक के मालों को एक बार में ख़रीद लिये जाने से माल उत्पादक अपने पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को बिना व्यवधान के जारी रख सकते हैं। **इसलिए तमाम माल उत्पादक किसी ऐसे व्यक्ति को अपना माल मूल्य से कम दाम पर बेचते हैं, जिसके पास मुद्रा का संचय होता है।** यह मुद्रा का संचय किसी भी वजह से उसके पास हो सकता है। वह उसे उत्तराधिकार में प्राप्त हो सकती है, या किसी माल उत्पादक के पास ही बाज़ार में उसके मालों के दाम उनकी माँग ज़्यादा होने के कारण और उसके माल के मूल्य से ऊँचे दाम पर बिकने के कारण हो सकता है। **मुद्रा का संचय रखने वाला यह व्यक्ति ही व्यापारी की भूमिका निभा सकता है।**

यह व्यापारी माल उत्पादक से उसके माल को माल के मूल्य से कम दाम पर ख़रीदता है और उसे उसके मूल्य बराबर दाम पर या, माँग-आपूर्ति के समीकरण के अनुकूल होने पर, उसके मूल्य से ज़्यादा दाम पर बेच सकता है। माल उत्पादक से जिस दाम पर व्यापारी माल को ख़रीदता है और माल का जो मूल्य होता है, उसका अन्तर उस व्यापारी का व्यापारिक मुनाफ़ा होता है। प्राक्-पूँजीवादी युग में इस प्रकार के मुनाफ़े का आधार **असमान विनिमय (unequal exchange)** होता है और इसे ***अलगाव पर आधारित मुनाफ़ा (profit upon alienation)*** कहा जाता है। क्योंकि यह माल उत्पादक से माल के मूल्य से कम दाम पर माल के *अलग किये जाने या अलगाव या ले लिये जाने* पर आधारित होता है। अभी हम मुनाफ़े को उत्पादन में पैदा होने वाली एक निर्धारित मात्रा वाली श्रेणी यानी बेशी मूल्य के उत्पादन के तौर पर नहीं देख सकते हैं। ऐसा केवल पूँजीवादी उत्पादन में होता है, जब मुनाफ़ा और कुछ नहीं बल्कि मज़दूर द्वारा, दिये गये कार्यदिवस में, पैदा मूल्य और उसकी श्रमशक्ति के मूल्य का अन्तर होता है, जो कि एक निर्धारित मात्रा वाली श्रेणी है। *यह पूँजीवादी उत्पादन में बेशी मूल्य का उत्पादन है और यह व्यापारी और स्वतन्त्र उत्पादक के बीच असमान विनिमय पर आधारित नहीं होता है।*

पूँजीवादी व्यवस्था में एक पूँजीपति मज़दूर के साथ आम तौर पर कोई असमान विनिमय नहीं करता है। चूँकि श्रमशक्ति एक विशिष्ट माल होती है जिसका गुण ही यही होता है कि वह अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में अपने से ज़्यादा मूल्य पैदा कर सकती है, इसलिए पूँजीपति औपचारिक तौर पर बाज़ार में मज़दूर के साथ समतुल्यों का विनिमय (यानी मज़दूरी और श्रमशक्ति का विनिमय) करने के बावजूद बेशी मूल्य को प्राप्त करता है। यदि वह पूँजीपति खुद ही व्यापारी की भूमिका में भी है और अपने माल को स्वयं ही बेचता है, तो वह पूरे बेशी मूल्य को मुनाफ़े के रूप में अपनी जेब के हवाले करता है। अगर वह स्वयं अपना माल नहीं बेचता तो वह उसे बेचने के लिए किसी व्यापारी को देता है और बदले में बेशी मूल्य का एक हिस्सा उस व्यापारी को **व्यापारिक मुनाफ़े (commercial profit)** के तौर पर देता है, जबकि **उद्यम के मुनाफ़े (profit of enterprise)** को अपने पास रखता है। यह असमान विनिमय नहीं बल्कि दो अलग प्रकार के पूँजीपतियों के बीच मज़दूरों के श्रम से पैदा बेशी मूल्य का बँटवारा (distribution of surplus value) है। ऐसा करने में औद्योगिक या उद्यमी पूँजीपति का क्या फ़ायदा है, इस पर हम आगे चर्चा करेंगे। लेकिन अभी इतना समझ लेना चाहिए कि पूँजीवादी माल उत्पादन से पहले के दौर में, यानी साधारण माल उत्पादन के दौर में माल उत्पादकों और व्यापारियों के बीच असमान विनिमय होता है और व्यापारी को जो मुनाफ़ा प्राप्त होता है, वह अलगाव पर आधारित मुनाफ़ा होता है, न कि बेशी मूल्य का उत्पदन। अभी उत्पादन व उत्पादन के साधनों पर किसी पूँजीपति का नियन्त्रण नहीं होता है, बल्कि स्वतन्त्र माल उत्पादक का नियन्त्रण होता है जो अपने माल को उसके मूल्य से कम दाम पर व्यापारी को देता है, क्योंकि या तो बाज़ार तक उसकी पहुँच नहीं होती या फिर उसे अपने मालों के मूल्य का एक हिस्सा तत्काल ही मुद्रा के रूप में प्राप्त हो जाता है और उसे अपने समस्त मालों के बिकने की प्रक्रिया का इन्तज़ार नहीं करना पड़ता। इसके चलते वह पुनरुत्पादन की प्रक्रिया तत्काल शुरू कर सकता है। व्यापारी के पास जो संचित मुद्रा होती है, जिसका इस्तेमाल वह स्वतन्त्र माल उत्पादक से माल ख़रीदने के लिए करता है उसे **व्यापारिक पूँजी (mercantile capital)** कहा जाता है। विशेष तौर पर प्राक्-पूँजीवादी उत्पादन पद्धतियों के दौर में, व्यापारिक पूँजी असमान विनिमय के ज़रिये स्वतन्त्र माल उत्पादकों को लूटती है और स्वतन्त्र माल उत्पादकों के उजड़ने, अपने उत्पादन के साधनों से वंचित होने और उजरती मज़दूरों तब्दील होने में व्यापारिक पूँजी की एक अहम भूमिका होती है। आज भी, यानी पूँजीवादी दौर में भी किसी साधारण माल उत्पादक के साथ व्यापारिक पूँजी का यही सम्बन्ध होगा। लेकिन उद्यमी पूँजीपति से व्यापारिक पूँजीपति का सम्बन्ध असमान विनिमय नहीं बल्कि बेशी मूल्य के उनके बीच बँटवारे से ही समझा जा सकता है और आज यही प्रधान प्रवृत्ति है।

इसी प्रकार, **सूदख़ोर पूँजी (usurious capital)** भी साधारण माल उत्पादन के ही दौर में स्वतन्त्र

(पेज 13 पर जारी)

मुद्रा का पूँजी में रूपान्तरण और पूँजीवादी माल उत्पादन

(पेज 12 से आगे)

माल उत्पादकों को सूद के ज़रिये लूटती है। माल उत्पादन की व्यवस्था एक अराजक व्यवस्था होती है। कोई भी माल उत्पादक पहले से नहीं जानता कि उसके मालों को बाज़ार में ख़रीदार मिलेंगे या नहीं। वह इस अपेक्षा के आधार पर उत्पादन करता है कि उसके मालों को पर्याप्त मात्रा में ख़रीदार मिलेंगे। उसे पहले से सामाजिक आवश्यकता का कोई सटीक ज्ञान नहीं होता है। यही हालत सभी माल उत्पादकों की होती है। उनका व्यक्तिगत श्रम सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम के रूप में तभी मान्यता पाता है, जबकि उसके माल को ख़रीदार मिलते हैं। ज़ाहिर है, ऐसी अराजक उत्पादन व्यवस्था में कुछ माल उत्पादक अपना माल बेच पाते हैं, कुछ आंशिक तौर पर बेच पाते हैं और कुछ तो बेच ही नहीं पाते। ऐसे में, यदि कोई माल उत्पादक अपने मालों को नहीं बेच पाता है या पर्याप्त मात्रा में नहीं बेच पाता है तो अपने पुनरुत्पादन को शुरू करने और अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे मुद्रा की आवश्यकता होती है, जो कि उधार के तौर पर उसे सूदख़ोर देते हैं, जो व्यापारी के ही समान ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनके पास मुद्रा का संचय मौजूद होता है। कई माल उत्पादक निरन्तर सूद पर उधार लेने की स्थिति में फँस जाते हैं और कालान्तर में वे तबाह हो जाते हैं और उजरती मज़दूर में तब्दील हो जाते हैं। इस प्रकार व्यापारिक पूँजी और सूदख़ोर पूँजी दोनों ही साधारण माल उत्पादकों के तबाह होने की प्रक्रिया में योगदान करती हैं और पूँजीवादी उत्पादन पद्धति की ओर संक्रमण को गति प्रदान करती हैं।

व्यापारी बाज़ार में तमाम मालों की माँग-आपूर्ति की स्थितियों की अपनी जानकारी के आधार पर और मुद्रा के अपने हाथों में संचित होने के आधार पर कई बार माल उत्पादकों के उत्पादन-सम्बन्धी निर्णयों पर नियन्त्रण भी स्थापित करने लगते हैं, हालाँकि उनकी इसमें दिलचस्पी नहीं होती कि मालों का उत्पादन कैसे होता है और न ही वे उत्पादन के साधनों के प्रत्यक्ष तौर पर स्वामी होते हैं। कई सूदख़ोर भी ऐसा करने लगते हैं क्योंकि अक्सर ये व्यापारी व सूदख़ोर अलग-अलग व्यक्ति नहीं होते थे, बल्कि एक ही व्यक्ति हुआ करते हैं। ऐसे में, ये व्यापारी माल उत्पादकों को बताने लगते हैं कि क्या पैदा किया जाय और किस मात्रा में पैदा किया जाय। आरम्भिक मध्यकाल से ही ऐसी प्रक्रिया दुनिया के कई देशों में देखी गयी। अक्सर व्यापारी ही माल उत्पादकों को मालों के उत्पादन के लिए कच्चे माल भी बेचने लगते थे। इसमें भी वह बुनियादी व्यापारिक उसूल पर अमल करते थे: 'सस्ता ख़रीदो और महँगा बेचो!' चूँकि ऐसे व्यापारी की उत्पादन व उसकी प्रक्रिया में कोई दिलचस्पी नहीं होती इसलिए उसे लगता है कि उसका मुनाफ़ा उसकी इसी चालाकी और कुशलता पर निर्भर करता है कि वह सस्ता ख़रीद सकता है और महँगा बेच सकता है! उसे लगता है कि मुनाफ़ा विनिमय में पैदा होता है, यानी बेचने-ख़रीदने में!

बहरहाल, एक क्रमिक प्रक्रिया में कई व्यापारी कई माल उत्पादकों को कच्चा माल भी बेचने लगे और उनसे उत्पादित माल लेने लगे। इसे 'पुटिंग आउट' व्यवस्था कहा जाता है। लेकिन इस व्यवस्था में भी अभी उत्पादन प्रक्रिया और श्रम प्रक्रिया व्यापारी के मातहत नहीं होती है, वह केवल कच्चे माल को माल उत्पादकों को बेचता है और उससे उत्पादित माल ख़रीदता है। अभी पूँजी ने **श्रम का** केवल **औपचारिक मातहतीकरण (formal subsumption of labour)** किया होता है। इसी प्रक्रिया के विकास का अगला चरण यह था कि कई व्यापारियों ने उजड़ने वाले माल उत्पादकों के उत्पादन के साधनों को ख़रीद लिया, अपनी वर्कशॉप लगा ली और उसमें वे उजरती मज़दूरों की श्रमशक्ति का शोषण करने लगे। इसके साथ, व्यापारी एक *औद्योगिक पूँजीपति* में तब्दील होने लगता है। कदम-दर-कदम श्रम प्रक्रिया पूँजी के मातहत आती जाती है और **श्रम का वास्तविक मातहतीकरण (real subsumption of labour)** होता है। यह मातहतीकरण साधारण सहकार, तकनीकी श्रम विभाजन व मैन्युफ़ैक्चरिंग से होते हुए फ़ैक्टरी व्यवस्था (यानी मशीनीकरण या मशीनोफ़ैक्चर) के आने के साथ ही अपनी पूर्णता पर पहुँचता है। बहरहाल, जैसे-जैसे वह उत्पादन की प्रक्रिया और श्रम की प्रक्रिया को पूर्ण रूप से अपने नियन्त्रण में लेता जाता है, यानी श्रम को पूर्ण रूप से अपने मातहत करता जाता है, जो कि पहले स्वतन्त्र माल उत्पादक के अपने नियन्त्रण में था, वैसे-वैसे औद्योगिक पूँजीपति में उसका रूपान्तरण पूरा होता जाता है। मार्क्स ने व्यापारियों के वर्ग के एक हिस्से के इस प्रकार से पूँजीपति में तब्दील होने की प्रक्रिया को **'ऊपर से पूँजीवाद' ('capitalism from above')** कहा था।

इसी के साथ, कुछ माल उत्पादक भी अपने पास मुद्रा पूँजी के संचय होने के साथ अपने उत्पादन के स्थल पर उजरती मज़दूरों को रखने लगते हैं। शुरुआत में, उस्ताद कारीगर के तौर पर, वे स्वयं भी उत्पादक श्रम करते रहते हैं, शागिर्दों का प्रशिक्षण भी करते रहते हैं और साथ ही उजरती मज़दूरों की श्रमशक्ति का शोषण कर मुनाफ़ा भी विनियोजित करते रहते हैं। कालान्तर में, इनमें से कुछ अपने आपको पूर्ण रूप से एक पूँजीपति में तब्दील कर लेते हैं, अपने आपको उत्पादक श्रम से काट लेते हैं और केवल बही-खाते व प्रबन्धन की देखरेख करने लगते हैं। औद्योगिक पूँजीपति वर्ग का यह हिस्सा जो कि माल उत्पादकों के एक छोटे-से हिस्से से पैदा हुआ, उसकी सामन्तवाद के ख़िलाफ़ विशेष तौर पर एक क्रान्तिकारी भूमिका थी और उसने एक दौर में क्रान्तिकारी बुर्जुआ वर्ग की भूमिका अदा की थी। इस प्रकार से पूँजीपति वर्ग के पैदा होने की प्रक्रिया को मार्क्स ने **'नीचे से पूँजीवाद' ('capitalism from below')** कहा था और इस रास्ते को **'वास्तविक क्रान्तिकारी रास्ता' ('the really revolutionary way')** कहा था। इन दोनों रास्तों को खेती में पूँजीवाद के विकास पर भी लागू किया जा सकता है। पहले वाले रास्ते, यानी 'ऊपर से पूँजीवाद' के विकास में मुख्य तौर पर भूस्वामी ही पूँजीवादी फ़ार्मर में तब्दील हो जाते हैं, जबकि दूसरे रास्ते यानी 'नीचे से पूँजीवाद' में मुख्य तौर पर काश्तकार व भूमिहीन मज़दूर पूँजीवादी फ़ार्मरों के वर्ग के तब्दील होते हैं।

इस प्रकार से व्यापार व वाणिज्य ने पूँजीवादी माल उत्पादन के पैदा होने की ज़मीन तैयार की थी। लेकिन इस प्रकार पूँजीवादी माल उत्पादन के प्रधान प्रवृत्ति बनने की केवल ज़मीन तैयार होती है। पूँजीवादी माल उत्पादन के प्रधान प्रवृत्ति बनने की प्रक्रिया स्वतन्त्र माल उत्पादकों (जिनमें कि किसान भी शामिल हैं) को व्यापक सामाजिक पैमाने पर उनके उत्पादन के साधनों व ज़मीन से जबरन उजाड़े जाने की लम्बी प्रक्रिया के साथ ही पूरी होती है, जिसे मार्क्स ने **आदिम संचय (primitive accumulation)** कहा था। लेकिन इस पर हम आगे के एक अध्याय में बात करेंगे।

फिलहाल हम साधारण माल उत्पादन के युग पर ही वापस लौटते हैं। माल उत्पादन के विकास के साथ दुनिया के अलग-अलग देशों के बाज़ार जुड़ जाते हैं। एक **विश्व बाज़ार (world market)** अस्तित्व में आने लगता है। यूँ तो वैश्विक व्यापार प्राचीन काल से ही मौजूद था। चीन और भारत में पैदा होने वाले मसालों, कपड़ों, खाद्य फसलों की माँग यूरोप, मध्य-पूर्व और उत्तरी अफ्रीका में थी और उसी प्रकार यूरोप में पैदा होने वाले कई मालों की माँग भारत, चीन, मध्य-पूर्व के क्षेत्रों में थी। लेकिन ज़्यादा ठोस रूप में एक अधिक समेकित आधुनिक विश्व बाज़ार के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया मध्यकाल के उत्तरार्द्ध और आरम्भिक आधुनिक काल में शुरू हुई। व्यापारिक पूँजी अपने देशों/राज्यों के बाज़ार के सन्तृप्त होने के साथ अन्य बाज़ारों व कच्चे मालों की स्रोत की तलाश में नये देशों व महाद्वीपों को खोजने की प्रक्रिया को वित्तपोषित भी करती थी। इसी प्रक्रिया में 15वीं-16वीं सदी में यूरोप के कई देशों से औपनिवेशिक यात्राएँ हुईं, जिनका नतीजा अमेरिका और एशिया के कई देशों का औपनिवेशीकरण था। औपनिवेशीकरण के साथ विश्व बाज़ार के समेकित और विस्तारित होने की प्रक्रिया ने पूँजी के संचय को और भी बढ़ाया, माल उत्पादकों के उजड़ने की दर को तेज़ किया, एक विचारणीय आकार के पूँजीपति वर्ग को पैदा किया और इस रूप में यूरोप में पूँजीवादी उत्पादन के प्रधान प्रवृत्ति में तब्दील होने की ज़मीन तैयार की।

मार्क्स ने अपने समय तक के विश्व के आर्थिक इतिहास के अध्ययन के आधार पर दिखलाया कि पूँजीवाद के पैदा होने में माल उत्पादन के विकसित होने के साथ व्यापार व वाणिज्य के विकास तथा एक विश्व बाज़ार के उदय की महती भूमिका थी।

उपरोक्त विवरण से आप एक महत्वपूर्ण नतीजा निकाल सकते हैं। ***पूँजी का इतिहास पूँजीवाद के इतिहास से पुराना है।*** **व्यापारिक पूँजी और सूदख़ोर पूँजी का उदय दास व्यवस्था के दौर में ही हो चुका था। ये पूँजी के प्रथम रूप थे क्योंकि पूँजी और कुछ नहीं होती बल्कि मुद्रा की वह मात्रा होती है जो निवेशित होने पर अपने आपको संवर्धित करती है या बढ़ाती है, यानी मुनाफ़ा देती है। अब यह मुनाफ़ा उजरती श्रम के शोषण के ज़रिये पूँजीवादी उत्पादन में बेशी मूल्य के उत्पादन के द्वारा पैदा होता है या फिर वह व्यापारिक व सूदख़ोर पूँजी द्वारा स्वतन्त्र माल उत्पादकों से असमान विनिमय और माल के मूल्य से कम दाम पर स्वतन्त्र माल उत्पादक से उनके माल के अलगाव, या फिर सूद के रूप में आता है जो कि अप्रत्यक्ष तौर रूप में असमान विनिमय ही है; यह अलग मसला है। सामान्य तौर पर, पूँजी मुद्रा की वह मात्रा है जो निवेश पर अपने आपको संवर्धित करती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पूँजी इतिहास के रंगमंच पर सर्वप्रथम मुद्रा के रूप में ही प्रकट होती है।** इसका यह अर्थ नहीं है कि पूँजी केवल मुद्रा के रूप में ही अस्तित्वमान रह सकती है। पूँजीवादी उत्पादन के दौर में पूँजीपति द्वारा उत्पादित माल जो अभी बिका नहीं है, वह उसकी **माल पूँजी (commodity capital)** है। उसने जो उत्पादन के साधन ख़रीदे हैं जिन्हें उत्पादन में लगाया जाता है, वह माल के पैदा होने के पूर्व **उत्पादक पूँजी (productive capital)** है। उसके हाथ में जो मुद्रा है, जिससे वह श्रमशक्ति व उत्पादन के साधन ख़रीदता है वह उसकी **मुद्रा पूँजी (money capital)** है। पूँजी इन तीनों रूपों में ही अस्तित्वमान रह सकती है। लेकिन ये तीन रूप औद्योगिक पूँजी द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया को चिह्नित करते हैं, न कि सूदख़ोर पूँजी या व्यापारिक पूँजी को। लेकिन, जैसा कि हम उपरोक्त ब्यौरे से समझ सकते हैं, पूँजी सर्वप्रथम व्यापारिक पूँजी और सूदख़ोर पूँजी के रूप में पैदा होती है, औद्योगिक पूँजी के रूप में नहीं और वह इस रूप में केवल मुद्रा के रूप में ही इतिहास में अवतरित हो सकती है।

इस सामान्य ऐतिहासिक विवरण के बाद हम साधारण माल उत्पादन व संचरण तथा पूँजी के बीच के तार्किक अन्तर पर आ सकते हैं। एक सुसंगत समझदारी के लिए यह विवरण अनिवार्य था।

साधारण माल उत्पादन व संचरण तथा पूँजी

साधारण माल उत्पादन व संचरण तथा पूँजी का अन्तर मालों व मुद्रा के आपसी रूपान्तरण की प्रक्रिया का अध्ययन करते ही स्पष्ट हो जाता है। दूसरे शब्दों में, जैसे ही हम साधारण माल उत्पादन के सामान्य सूत्र (general formula of simple commodity production) और पूँजी के सामान्य सूत्र (general formula of capital) को देखते हैं, उनके बीच का अन्तर साफ़ हो जाता है। साधारण माल उत्पादन का सामान्य सूत्र होता है:

माल - मुद्रा -माल (मा - मु - मा)
Commodity - Money - Commodity (C-M-C)

यह एक माल के उत्पादन के साथ शुरू होता है, जिसका उत्पादक, यानी स्वतन्त्र माल उत्पादक, मुद्रा के साथ उस माल का विनिमय करता है यानी उसे बेचता है और प्राप्त मुद्रा से वह अपने लिए आवश्यक माल ख़रीदता है। यह सर्किट माल के साथ ही शुरू होता है और माल के साथ ही ख़त्म होता है। लेकिन ये गुणात्मक रूप से भिन्न माल होते हैं। ज़ाहिर है, कोई जूता बनाने वाला माल उत्पादक अपने माल को बेचकर जूता ही नहीं ख़रीदेगा! इसलिए साधारण माल उत्पादन के इस आम सूत्र के दोनों छोरों पर जो उपयोग-मूल्य मौजूद होते हैं, वे भिन्न होते हैं, यानी वे गुणात्मक रूप से अलग माल होते हैं। लेकिन जहाँ तक *मूल्य* का प्रश्न है, तो इन दोनों मालों का मूल्य समान होता है। यानी, इसके दोनों छोरों पर जो मूल्य होते हैं, वे समान होते हैं। *दूसरे शब्दों में, दोनों छोरों पर जो माल मौजूद होते हैं, वे उपयोग-मूल्य के रूप में भिन्न होते हैं, लेकिन समान मूल्य के होते हैं।*

यहाँ मुद्रा मालों के एक क्षणिक या अस्थायी (transient) रूप के तौर पर प्रकट होती है। यानी, वह बस मालों के विनिमय के माध्यम के रूप में प्रकट होती है और उसका काम बस इस विनिमय को अंजाम देना होता है। मक़सद होता है एक विशिष्ट उपयोग-मूल्य को प्राप्त करके एक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति। मसलन, माल उत्पादक 'क' अपने जूते को बाज़ार में बेचता है, उसके बदले मुद्रा प्राप्त करता है और उस मुद्रा से अपने लिए आवश्यक रोटी, कपड़ा, अन्य सेवाएँ आदि ख़रीदता है। जिस माल उत्पादक 'ख' ने वह जूता बाज़ार में व्यापारी से या सीधे जूता बनाने वाले माल उत्पादक 'क' से ख़रीदा, वह उसने मुद्रा की उस राशि से ख़रीदा

(पेज 14 पर जारी)

मुद्रा का पूँजी में रूपान्तरण और पूँजीवादी माल उत्पादन

(पेज 13 से आगे)

है, जो उसे अपने द्वारा उत्पादित माल (मान लें, हथौड़े) बेचकर प्राप्त हुई थी और उसने जूता इसलिए ख़रीदा क्योंकि उसे उसकी आवश्यकता थी। **यानी, यह सूत्र दिखलाता है कि यहाँ माल उत्पादक *ख़रीदने के लिए बेचता (selling to buy)* है।** इस प्रकार, मुद्रा की मध्यस्थता के ज़रिये अलग-अलग माल उत्पादक अपने मालों का विनिमय करते हैं। साधारण माल उत्पादन का जो आम सूत्र है उसे देखते ही हम समझ जाते हैं कि इसका सर्किट माल से शुरू होकर माल पर ख़त्म हो जाता है क्योंकि जिस माल उत्पादक को जिस माल की आवश्यकता है, वह माल उसके हाथ में जाने के बाद संचरण की प्रक्रिया से ग़ायब हो जाता है और उसका उपभोग कर लिया जाता है। इसलिए, साधारण माल उत्पादन का सर्किट माल से शुरू होकर माल पर ही समाप्त हो जाता है।

अब आते हैं पूँजी के सामान्य सूत्र पर। यह इस प्रकार होता है:

मुद्रा - माल - मुद्रा' (मु - मा - मु')
Money - Commodity - Money' (M-C-M')

जैसा कि इस सूत्र से स्पष्ट है, यहाँ पूँजीपति *बेचने के लिए ख़रीदता (buying to sell)* है। यहाँ प्रक्रिया मुद्रा के साथ शुरू होती है और मुद्रा के साथ ही उसका *एक चरण* समाप्त होता है। शुरू में मौजूद मुद्रा और अन्त में मौजूद मुद्रा परिमाणात्मक तौर पर भिन्न होती है, लेकिन गुणात्मक तौर पर, दोनों एक ही चीज़ हैं: मुद्रा। ज़ाहिर है, कोई यदि बेचने के लिए ख़रीद रहा है और वह अगर 25 रुपये में कोई माल ख़रीदता है, तो वह उससे ज़्यादा दाम पर यानी 25 रुपये से ज़्यादा दाम पर बेचने के लिए ही ख़रीद रहा है, वरना इस पूरी क़वायद का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। इसलिए अन्त में प्राप्त होने वाली मुद्रा परिमाण में शुरू में निवेश की जा रही मुद्रा से *ज़्यादा होनी चाहिए* और पूँजीपति इसी इरादे और अपेक्षा से निवेश कर रहा है। इसीलिए सूत्र के अन्त में मुद्रा को *प्राइम (')* चिह्न से दिखाया गया है, जो यह दिखलाता है कि अन्त में प्राप्त हुई मुद्रा शुरू में निवेशित मुद्रा की मात्रा से अधिक *होनी चाहिए।* अन्त में चिह्नित *मुद्रा' (M')* और कुछ नहीं है, बल्कि मूलत: निवेशित *मुद्रा + मुनाफ़ा (M + m)* है। यहाँ m मुनाफ़े का प्रतिनिधित्व कर रहा है। लेकिन याद रखें, मुनाफ़े का प्राप्त होना केवल एक अपेक्षा है जो कि मुद्रा का निवेश करने वाला पूँजीपति रखता है, जैसा कि हमने ऊपर बताया। उसकी यह अपेक्षा पूरी हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। हो सकता है कि उसके माल को पर्याप्त ख़रीदार न मिलें और उसकी कीमत उसके मूल्य से नीचे गिर जाये। इस सूरत में उसे 0 मुनाफ़ा भी मिल सकता है, या उसका मुनाफ़ा *नकारात्मक* भी हो सकता है, यानी उसे घाटा भी हो सकता है।

बहरहाल, परिभाषात्मक तौर पर, पूँजी मुद्रा की वह मात्रा है जो अपने आपको बढ़ाती है। यहाँ पर सर्किट M - C - M' के साथ ख़त्म नहीं होता है। निवेशित मुद्रा (M) मुनाफ़ा (m) देती है, लेकिन यह मुनाफ़ा फिर से पूँजी के साथ एकीकृत होता है और पूँजी की कुण्डलाकार पथ में चलने वाली प्रक्रिया को फिर से शुरू कर देता है। नतीजतन, यह M - C - M' साधारण माल उत्पादन के C - M - C के समान एक बन्द सर्किट नहीं होता बल्कि एक स्पाइरल (कुण्डलाकार पथ) के समान होता है।

ध्यान रहे कि M - C - M' पूँजी का आम सूत्र है और यह समान रूप से औद्योगिक पूँजी और व्यापारिक पूँजी पर लागू होता है। लेकिन मुद्रा को अपने आपको बढ़ाने के लिए माल का रूप लेना ही पड़ता है। मसलन, कोई भी 100 रुपये के बदले सीधे आपको 120 रुपये नहीं दे देगा! यानी, मुद्रा की किसी मात्रा का विनिमय मुद्रा की उसी मात्रा से होना एक बेतुकी बात है और ऐसी मूर्खतापूर्ण कसरत कोई पागल ही करेगा। केवल सूदख़ोर पूँजी के मामले में ऐसा *दिखता* है कि वह 100 रुपये उधार देता है और कर्ज़दार व्यक्ति कुछ समय बाद उसे सूद के साथ, मिसाल के तौर पर, 120 रुपये वापस करता है। लेकिन यह सिर्फ *दिखता* है, ऐसा वास्तव में होता नहीं है क्योंकि कर्ज़दार के हाथ में आने के बाद मुद्रा का क्या इस्तेमाल होता है, या कर्ज़दार व्यक्ति कहाँ से सूद देता है, यह सीधे नज़र नहीं आता। वस्तुत:, जो उधार लेता है, वह या तो अपने मुनाफ़े में से एक हिस्सा सूद के तौर पर देता है, जो कि स्वयं कुल उत्पादित मूल्य के एक हिस्से बेशी मूल्य का ही एक अंग है, जो स्वयं मालों के उत्पादन में ही पैदा होता है; या फिर कर्ज़दार स्वयं अपने वेतन/मज़दूरी में से सूद देता है, जिस सूरत में वह अपने श्रमशक्ति की एवज़ में मिलने वाली मज़दूरी से एक हिस्सा दे रहा है, जो कि स्वयं मज़दूर द्वारा उपभोग किये जाने वाले आवश्यक मालों का ही मौद्रिक रूप है। इसलिए सूदख़ोर के लिए M - M' नज़र आने वाला सूत्र यह छिपा देता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में बेशी मूल्य का उत्पादन ही आम तौर पर सूद का भी स्रोत है और वह वास्तविक उत्पादन में ही पैदा हो सकता है। लेकिन इस पर और विस्तार से हम आगे बात करेंगे।

पूँजी को मिलने वाला यह मुनाफ़ा दो प्रकार से आ सकता है, जैसा कि हमने ऊपर ज़िक्र किया है। व्यापारिक पूँजी की सूरत में वह *अलगाव के आधार पर मुनाफ़ा (सस्ता ख़रीदकर महँगा बेचना)* से आ सकता है जिसमें व्यापारी और स्वतन्त्र माल उत्पादक के बीच असमान विनिमय हो रहा है, या, औद्योगिक पूँजी की सूरत में वह बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया में पैदा हो सकता है। लेकिन अभी मार्क्स इस पर विचार नहीं करते और पाठक से आग्रह करते हैं कि पहले वह पूँजी का सामान्य सूत्र (General Formula of Capital) समझें, यानी *पैसे से और ज़्यादा पैसे* पैदा होना, यानी, M - C - M'।

लेकिन यदि विनिमय में समतुल्यों का ही विनिमय हो रहा है और यहाँ कोई असमान विनिमय नहीं शामिल है, तो फिर **यह मुनाफ़ा कहाँ से आया? मुनाफ़े का स्रोत क्या है?** यहीं हमें इस सामान्य सूत्र के अन्तरविरोध स्पष्ट रूप में दिखलायी पड़ते हैं।

पूँजी के सामान्य सूत्र में मौजूद अन्तरविरोध

जैसा कि हमने ऊपर चिह्नित किया, यह अन्तरविरोध मूलत: यह है कि यदि आम तौर पर माल उत्पादन में समतुल्यों का विनिमय हो रहा है, तो फिर M से शुरू हुई प्रक्रिया C से होते हुए M' (M + m) पर कैसे समाप्त होती है? यह m यानी मुनाफ़ा कहाँ से आता है? ऐसा कैसे होता है कि पूँजीपति कम मुद्रा से ख़रीदता है और ज़्यादा मुद्रा के बदले बेचता है? वाणिज्यवादी (mercantilist) कहा करते थे कि मुनाफ़ा विनिमय की प्रक्रिया में ही सस्ता ख़रीदने और महँगा बेचने से पैदा होता है। लेकिन तब हर मुनाफ़ा किसी न किसी का घाटा होगा, है न? क्योंकि एक व्यक्ति माल को उसके मूल्य से सस्ता ख़रीद रहा है और दूसरा व्यक्ति माल को उसके मूल्य से सस्ता बेच रहा है! इसमें और उस स्थिति में कोई अन्तर नहीं है जिसमें कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कुछ रुपये चोरी कर ले रहा है! समूचे पूँजीवादी समाज में मुनाफ़े की व्याख्या ऐसी चोरी या चालाकी से किये गये असमान विनिमय से नहीं की जा सकती है। साथ ही, ऐसी व्याख्या कभी यह नहीं बता सकती कि समूची अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादित व संचरित मूल्य निरपेक्ष रूप से बढ़ कैसे रहा है, क्योंकि यदि हर मुनाफ़ा किसी और का घाटा है, तो कुल संचरित हो रहे मूल्य में बढ़ोत्तरी की व्याख्या नहीं की जा सकती जो कि पूँजीवादी समाज में सामान्य तौर पर होता है।

इसलिए स्पष्ट है कि मूल्य न तो संचरण की प्रक्रिया में पैदा होता है और न ही नष्ट होता है। संचरण में तो यह केवल माल-रूप से मुद्रा-रूप और मुद्रा-रूप से माल-रूप में रूपान्तरित होता है। इसे हम **मूल्य का संरक्षण सिद्धान्त (Law of Conservation of Value)** कहते हैं। इसलिए हमें मूल्य और मुनाफ़े के सृजन को समझने के लिए संचरण, यानी मालों के विनिमय या बेचे-ख़रीदे जाने, के क्षेत्र के बाहर देखना होगा। असल में, मुद्रा *संचरण में* पूँजी *बनती* है लेकिन *संचरण से* पूँजी नहीं बनती है। इसलिए मुद्रा पूँजी किस प्रकार बनती है, यानी वह अधिक मुद्रा पैदा करने में सक्षम कैसे बनती है, यह समझने के लिए हमें उत्पादन के क्षेत्र में जाना होगा।

यहाँ केन्द्रीय मुद्दा इस बात को समझना है कि **पूँजीवाद में श्रमशक्ति स्वयं एक माल में तब्दील हो जाती है।** मार्क्स कहते हैं कि संचरण का क्षेत्र 'समानता और स्वतन्त्रता' का क्षेत्र है। आप किसी को अपना माल बेचने के लिए बाध्य नहीं कर सकते और वहाँ समतुल्यों का विनिमय होता है। यह संचरण के क्षेत्र की ख़ासियत होती है। यानी, M - C - M' में M - C भी समतुल्यों का विनिमय है और C - M' भी समतुल्यों का विनिमय है। अभी हम मूल्य व दाम में वैयक्तिक स्तरों पर आने वाले अन्तरों को छोड़ दें, तो *सामाजिक तौर पर*, पूँजीपति वर्ग जिन मालों को ख़रीदता है, यानी उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति, वह उनके मूल्य पर ख़रीदता है। *सामाजिक तौर पर,* वह अपने मालों को उनके मूल्य पर ही बेचता है। यानी, M - C और C - M', दोनों में ही समतुल्यों का विनिमय हो रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि C के मूल्य में बढ़ोत्तरी हो रही है। लेकिन ऐसा तभी हो सकता है जब पूँजीपति जो माल ख़रीदता है उनमें कोई ऐसा विशिष्ट माल हो जिसका गुण ही यह हो कि वह अपने उपभोग की प्रक्रिया में अपने से ज़्यादा मूल्य पैदा कर सकता हो। वह विशेष माल है : **श्रमशक्ति।**

श्रमशक्ति उत्पादन की प्रक्रिया में ख़र्च होती है, यानी उसका *उत्पादक उपभोग* होता है। श्रमशक्ति का ख़र्च और कुछ नहीं है बल्कि **जीवित श्रम (living labour)** है। और यह जीवित श्रम ही मूल्य का एकमात्र स्रोत होता है। श्रमशक्ति अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में अपने पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में लगने वाले श्रम से ज़्यादा जीवित श्रम देती है। दूसरे शब्दों में, श्रमशक्ति अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में अपने मूल्य से ज़्यादा नया मूल्य पैदा करती है। यानी, पहले वह अपने मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करती है और उसके बाद वह उससे अधिक या बेशी मूल्य पैदा करती है। **यह बेशी मूल्य ही समस्त पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े, लगान, सूद व वाणिज्यिक मुनाफ़े का स्रोत होता है।**

चूँकि श्रमशक्ति स्वयं एक माल बन चुकी है, इसलिए उसका मूल्य भी उसी प्रकार निर्धारित होता है जिस प्रकार सभी मालों का मूल्य निर्धारित होता है : यानी उनमें लगने वाले सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की मात्रा से। **श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन का अर्थ क्या है?** श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन का अर्थ है मज़दूर के सामान्य जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं और सेवाओं का मज़दूर द्वारा उपभोग। यानी, मज़दूर वर्ग द्वारा उपभोग किये जाने वाले वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन, यानी उसके गुज़ारे हेतु आवश्यक मालों के उत्पादन में लगने वाला सामाजिक रूप से आवश्यक अमूर्त श्रम श्रमशक्ति के मूल्य को निर्धारित करता है। दूसरे शब्दों में, भोजन, वस्त्र, न्यूनतम शिक्षा, दवा-इलाज तथा अन्य मज़दूरी-उत्पाद (wage-goods) की वह मात्रा जिसकी आवश्यकता एक मज़दूर को अपने और अपने परिवार के जीवन के लिए ज़रूरी है, उनका मूल्य ही श्रमशक्ति के मूल्य को निर्धारित करता है। *इसमें मज़दूर परिवार के जीवन-यापन योग्य मज़दूरी-उत्पादों को आकलित किया जाता है क्योंकि पूँजीपति वर्ग के लिए यह ज़रूरी होता है कि मज़दूरों की नस्ल जारी रहे और मज़दूरों की अगली पीढ़ियाँ भी आम तौर पर मज़दूर परिवारों में तैयार होती रहें।* मज़दूर की किसी कुशलता के उत्पादन का ख़र्च भी उसके श्रमशक्ति के मूल्य में शामिल हो जाता है, हालाँकि एक कुशल मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य ठीक इसीलिए ज़्यादा होता है क्योंकि वह उत्पादन की प्रक्रिया में सिर्फ़ *अपनी* श्रमशक्ति के साथ भागीदारी नहीं करता बल्कि उन मज़दूरों की श्रमशक्ति के साथ भागीदारी करता है जिनका श्रम कुशलता के उत्पादन में ख़र्च हुआ है। ऐसे कुशल मज़दूर का श्रम **साधारण श्रम (simple labour)** नहीं है, बल्कि **जटिल श्रम (complex labour)** है। मालों के मूल्य के निर्धारण के समय हम जटिल श्रम को साधारण श्रम में परिवर्तित करते हैं। इसके लिए कुशलता के उत्पादन की लागत के आधार पर एक *कोफिशियेंट* का इस्तेमाल किया जाता है जिसके आधार पर आप जटिल श्रम के एक घण्टे को, मिसाल के तौर पर, साधारण श्रम के 3 घण्टे में परिवर्तित कर सकते हैं। लेकिन इस पर हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे। अभी इतना समझ लेना पर्याप्त है कि मज़दूर के श्रमशक्ति का मूल्य ठीक उसी प्रकार निर्धारित होता है जिस प्रकार किसी भी माल का मूल्य निर्धारित होता है। यह मज़दूरी-उत्पादों की उस टोकरी (basket of wage-goods) के मूल्य से निर्धारित होता जिसका इस्तेमाल आम तौर पर एक औसत मज़दूर अपने और अपने परिवार के जीवन के पुनरुत्पादन के लिए करता है।

मिसाल के लिए, अगर मज़दूर को अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए 500 रुपये प्रतिदिन की आवश्यकता होती है और कार्यदिवस की लम्बाई 8 घण्टे है, तो वह 500 रुपये के बराबर मूल्य, यानी अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य 8 घण्टे से कम समय में ही, मसलन, 4 घण्टे में ही पैदा कर लेता है और उसके बाद के 4 घण्टे वह जो श्रम करता है, उससे पैदा होने वाला मूल्य, यानी अतिरिक्त 500 रुपये, बेशी मूल्य होता है, जो पूँजीपति के मुनाफ़े का स्रोत है। ज़ाहिर है, मज़दूर उत्पादन के दौरान अपनी श्रमशक्ति के बराबर मूल्य और जो बेशी मूल्य पैदा करता है, वह उत्पाद के रूप में होता है। ख़र्च होने वाले उत्पादन के साधनों का मूल्य श्रम प्रक्रिया में संरक्षित होता है और ज्यों का त्यों उत्पाद में स्थानान्तरित होता है। यानी, पूँजीपति को बेशी मूल्य यहाँ बेशी उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है, जिसे बेचकर वह उसे मुद्रा-रूप में रूपान्तरित करता है।

आगे हम पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया को श्रम प्रक्रिया और मूल्य-संवर्धन प्रक्रिया के रूप में समझेंगे। इससे हमें श्रम की दोहरी भूमिका स्पष्ट होगी और हम मूल्य तथा बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया और उपयोग-मूल्य के रूप में मालों के उत्पादन को और गहराई से समझ पायेंगे।

(अगले अंक में जारी)

बिपरजॉय चक्रवात आने वाले गम्भीर भविष्य की चेतावनी दे रहा है!

● लता

पिछले 15 जून को बिपरजॉय नाम का तूफान गुजरात के समुद्र तट से टकराया। 125 से 135 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ़्तार से चलने वाला यह चक्रवात जब पाकिस्तान से लगे गुजरात के कच्छ से टकराया तो ज़मीन पर इसकी गति 65 किलोमीटर प्रति घण्टे हो गयी। तेज़ आँधियों, तट पर प्रबल समुद्री लहरों, भारी वर्षा और बाढ़ के बीच बिपरजॉय चक्रवात ने अपना रुख समुद्र से ज़मीन की ओर किया और यह गुजरात के जखाऊ बन्दरगाह से टकराया। 2,525 किलोमीटर का रास्ता तय करने वाला यह चक्रवात 1977 के बाद हिन्द महासागर का सबसे लम्बा चक्रवात रहा। लम्बा रास्ता होने की वजह से मौसम विभाग के लिए बिपरजॉय चक्रवात के सम्बन्ध में कोई भी भविष्यवाणी कर पाना कठिन हो रहा था। इस चक्रवात की उम्र 13 दिन तीन घण्टे की थी जिसमें अनुमान लगाया जा रहा था की यह तटीय क्षेत्रों में भयानक तबाही मचाने जा रहा है। इसलिए मौसम विभाग ने इसे 'बेहद गम्भीर' श्रेणी में रखा था। लेकिन तट से टकराने के पहले इसकी कम होती हुई आक्रामकता को देखते हुए इसे 'बेहद गम्भीर' से 'गम्भीर' की श्रेणी में कर दिया गया, हालाँकि गोदी मीडिया के नौटंकीबाज़ों को देख कर ऐसा लग रहा था अब प्रलय ही आने वाला है। स्टूडियो में रेन कोट और छाता लगा कर वीभत्स तस्वीर प्रस्तुत करने वाले इन एंकरों को तट पर रहने वाले मज़दूर और आम मेहनतकश की कितनी चिन्ता है इसका अन्दाज़ा उनकी मोदी की अन्धभक्ति से लगाया जा सकता है। इस ख़बर को भी इन्होंने मसाला बना दिया और मोदी और शाह के गुणगान में जुट गये। पिछले चक्रवातों के बाद जान-माल के नुक़सान और सरकार द्वारा राहत और मुआवज़ों को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि इसबार भी नुक़सान का बोझ मेहनतकश के कन्धों पर ही पड़ेगा। चक्रवात की तबाही से सबसे अधिक प्रभावित तटीय क्षेत्रों में रहने वाले मछुआरे, मज़दूर और गरीब आबादी होगी जैसा की हमेशा ही होता है। तमाम खोखले वायदों और मुआवज़ों के बीच जान-माल की तबाही की भरपाई मज़दूर-मेहनतकशों को अपने खून-पसीने की कमाई से ही करनी होगी।

ख़ैर, हम बिपरजॉय चक्रवात पर वापस आते हैं। अगर हम इतिहास में जायें तो पायेंगें कि भारत के इर्द-गिर्द बनने वाले चक्रवात मुख्यतः बंगाल की खाड़ी में बनते हैं। अरब सागर का तापमान तुलनात्मक रूप से कम होने की वजह से यहाँ चक्रवात कम बनते हैं। लेकिन पिछले लम्बे समय से मौसम विशेषज्ञों और मौसम वैज्ञानिकों के अध्ययन बता रहे हैं कि ग्लोबल वार्मिंग (भूमण्डलीय ऊष्मीकरण) की वजह से अरब सागर का तापमान औसत से अधिक बढ़ रहा है। इसकी वजह से अब अरब सागर में पहले के मुक़ाबले ज़्यादा शक्तिशाली और तीव्र चक्रवात बन रहे हैं। बिपरजॉय इसका ही उदाहरण है। मौसम विशेषज्ञों और मौसम वैज्ञानिकों के बीच यह बहस का मुद्दा है कि ग्लोबल वार्मिंग चक्रवातों को प्रभावित करते हैं या नहीं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों के चक्रवातों की शक्ति, तीव्रता और विनाश को देखते हुए किसी भी रूप में ग्लोबल वार्मिंग के प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। स्वयं बिपरजॉय चक्रवात इसका प्रमाण है।

नेशनल ओशियानिक एण्ड एटमोसफेरिक ऐडमिनिस्ट्रेशन के वैज्ञानिकों ने हालिया शोध में पाया है कि इस पूरी सदी में ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन की वजह से वैश्विक तापमान और वैश्विक समुद्री सतह का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है। इसकी वजह से अलग-अलग उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की विनाशकारी शक्ति बढ़ने की सम्भावना है। वर्ल्ड मेटेऑरलॉजिकल ऑर्गनाइज़ेशन (विश्व मौसम विज्ञान संगठन) ने एक मूल्यांकन किया है जिसमें इस बात का अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है कि वैश्विक तापमान में 2 डिग्री बढ़त का उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों पर क्या असर पड़ा है।

ग्रीनहाउस गैस के स्तर में वृद्धि की वजह से वायुमण्डल में कैद ऊष्मा महासागर सोख लेते हैं जिसकी वजह से महासागर का तापमान बढ़ने लगता है और साथ ही समुद्र स्तर भी बढ़ जाता है। मॉडल आधारित इस शोध के परिणाम बताते हैं कि जिस तरह विश्व का तापमान बढ़ रहा है उसकी वजह से अब उष्णकटिबन्धीय चक्रवात ज़्यादा शक्तिशाली और विनाशकारी होंगें। ये चक्रवात तटीय इलाकों में भयानक बाढ़, विनाशकारी तूफ़ान और मूसलाधार वर्षा लेकर आयेंगे। अभी इस बात के अधिक परिणाम नहीं हैं कि उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की संख्या बढ़ेगी लेकिन ज़्यादा अध्ययन बताते हैं कि ग्लोबल वार्मिंग की वजह से उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की संख्या घट सकती है लेकिन इनकी तीव्रता और विनाशकारिता निश्चित ही बढ़ेगी। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों को पैदा करने वाली भौतिक परिस्थितियों को प्रभावित कर रहे हैं जिसकी वजह से चक्रवातों की संख्या में कमी आ सकती है लेकिन यही परिस्थितियाँ चक्रवात बन जाने की स्थिति में उसे विनाशकारी बनाने में मददगार साबित होंगी क्योंकि ग्लोबल वार्मिंग की वजह से महासागरों का बढ़ा तापमान और नमी का उच्च स्तर चक्रवातों को विशालकाय बनाने के लिए प्रचुर ईंधन प्रदान करेंगे।

इस पूरी प्रक्रिया को बेहतर समझने के लिए हमे थोड़ा उष्णकटिबन्धीय चक्रवात की परिघटना को समझना होगा तब ही हम समझ पाएँगे की ग्लोबल वार्मिंग किस प्रकार इन्हें प्रभावित कर रहे हैं।

उष्णकटिबन्धीय चक्रवात का निर्माण

उष्णकटिबन्धीय चक्रवात उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र के महासागरों में पैदा होते हैं और उष्णकटिबन्धीय तटों, क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं। अलग-अलग क्षेत्र में इनके अलग-अलग नाम हैं जैसे साइक्लोन, हर्रिकेन और टाइफून। भूमध्य रेखा के इर्द-गिर्द उत्तरी गोलार्ध (नॉर्दर्न हेमिस्फियर) में कर्क रेखा और दक्षिणी गोलार्ध (सदर्न हेमिस्फियर) में मकर रेखा के बीच उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र है। उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का निर्माण इस इलाके में होता है। हिन्द महासागर में इन्हें 'साइक्लोन' कहा जाता है, दक्षिण चीन सागर में इन्हें 'टाइफून' नाम दिया जाता है, पश्चिम ऑस्ट्रेलिया में यह 'विली विली' है और कैरेबिआई सागर में यह 'हरिकेन' कहलाता है। लेकिन नाम जो भी हो ये सभी उष्णकटिबन्धीय चक्रवात हैं। उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र पृथ्वी का सबसे गर्म हिस्सा होता है क्योंकि यहाँ सूरज की किरणें बिल्कुल सीधे आती हैं और खड़ी होती हैं। सीधे और खड़े सौर्य विकिरण से उष्णकटिबन्धीय समुद्र गर्म रहते हैं। समुद्र की सतह की गर्म और नमी से भरी हवा ऊपर की ओर उठती है। जब सतह से गर्म हवा उठ कर ऊपर की ओर जाने लगती है तो सतह पर कम हवा का दबाव बनता है। खाली हुई जगह को भरने के लिए आस-पास की उच्च दबाव वाली ठण्डी हवा कम दबाव की ओर दौड़ती है। फिर यह उच्च दबाव वाली ठण्डी हवा भी नमी से भर गर्म हो कर ऊपर की ओर उठती है और पीछे सतह पर कम दबाव छोड़ जाती है। इस जगह को आस-पास की हवा भारती है और यह प्रक्रिया जारी रहती है। हम उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों को विशाल इन्जन कह सकते है। अभी तक हमने नमी से भरी हुई गर्म हवा के ऊपर उठने की प्रक्रिया देखी। नमी वाली गर्म हवा ऊपर उठती है। जैसे-जैसे वयुमण्डल में ऊँचाई बढ़ती है तापमान घटता है। ठण्डे तापमान के सम्पर्क में आ कर नमी वाली गर्म हवा संघनित हो बादल बन जाती है। लेकिन मात्र बादल बनने से यह तूफ़ान में नहीं बदलती।

कम दवाब वाले केन्द्र और फिर आस-पास की ठण्डी हवा का कम दबाव वाले केन्द्र की ओर भागना एक इन्जन के रूप में तब्दील तब होता है जब यह गोलाकार गति में घूमता है। इसके लिए इस पूरी प्रक्रिया का कम दबाव वाले केन्द्र पर गोल-गोल चक्कर काटते हुए घूमना ज़रूरी है। तभी यह गोल-गोल चक्कर में घूमती हवा यानी चक्रवात बनेगा। इस प्रक्रिया को पूरा करने का काम कोरिऑलिस प्रभाव करता है। मतलब हवा का उच्च दबाव से कम दबाव की ओर बहना और पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना मिल कर वह प्रभाव उत्पन्न करते हैं जिसकी वजह से समुद्र की गर्म सतह पर बन रहे कम दबाव वाले केन्द्र के चारों तरफ़ हवा तेज़ गति में घूमने लगती है। समुद्र की सतह पर कम दबाव वाले क्षेत्र को तूफ़ान की आँख यानी आई ऑफ दी साईक्लोन भी कहते हैं।

जैसा की हम जानते हैं हवा हमेशा उच्च दवाब वाले क्षेत्र से कम दबाव वाले क्षेत्र की ओर बहती है। पृथ्वी के दोनों ध्रुवों यानी उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर बर्फ़ जमी होती है। यहाँ हवा का उच्च दबाव होता है। जैसा हमने पहले ही बताया कि उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र पृथ्वी का सबसे गर्म हिस्सा होता है। यहाँ हवा का दबाव कम होता है। इस तरह ध्रुवों से उच्च दबाव वाली हवा उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र की ओर दौड़ती है। लेकिन चूँकि पृथ्वी एक उपगोल है और उसका ग्रहपथ अण्डाकार है और साथ में यह अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की तरफ़ घूमती है। पृथ्वी के उपगोल होने की वजह से ध्रुवों की तुलना में कर्क रेखा यानी पृथ्वी के मध्य में घूमने की गति सबसे अधिक होती है। इसतरह ध्रुवों से आने वाली हवा गोल सतह होने की वजह से मध्य तक आते-आते पृथ्वी की गति की उल्टी दिशा में घूम जाती है। यह गति का सामान्य नियम है। उत्तरी ध्रुव से आने वाली हवा दाहिनी ओर मुड़ जाती है और दक्षिणी ध्रुव से आने वाली हवा बाईं ओर मुड़ जाती है।

अब एक बार फिर हम तूफ़ान के केंद्र या आँख यानी आई ऑफ दी साईक्लोन पर वापस आते हैं। समुद्र की सतही तापमान का 26.5 डिग्री पहुँचने पर समुद्र की सतह से नमी भरी गर्म हवा ऊपर उठने लगती है और खाली जगह को कम दबाव वाली हवा भरने लगती है। यहाँ पर चाहे वह गर्म हो कर ऊपर उठ रही हवा हो या कम दबाव वाली ठण्डी हवा हो सब पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में कोरिऑलिस प्रभाव से दाहिनी ओर मुड़ जाती है और दक्षिणी गोलार्ध में बाईं ओर मुड़ जाती है। यह ठण्डी हवा कम दबाव वाले केन्द्र या आँख की ओर आकर्षित होती है साथ ही बार-बार दाहिनी ओर भी मुड़ती रहती है जिससे इसमें स्पिन यानी चक्कर आता है। अब तूफ़ान की आँख में जितना दबाव कम होगा बाहर की ठण्डी हवा यानी कम दबाव से आने वाली हवा उतनी ही तेज़ गति से आँख की ओर दौड़ेगी। इस तरह तूफ़ान की गति तेज़ होती है और कोरिऑलिस प्रभाव इसे स्पिन प्रदान करता है यानी गोल-गोल घुमाता है। मतलब समुद्र की सतह का गर्म तापमान नमी वाली हवा को ऊपर ढकेलेगा और इस जगह को ठण्डी हवा भरेगी। ऊपर घने बादल बनते जायेंगे और कोरएओलिस प्रभाव इस पूरी मशीन को स्पिन देगा यानी गोल-गोल चक्कर में घुमायेगा। इस पूरी परिघटना का मूल प्रेरक है समुद्र की सतह का गर्म तापमान और इससे उठने वाली गर्म हवा।

साईक्लोन या उष्णकटिबन्धीय चक्रवात बनने की प्रक्रिया को समझने के बाद हम इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि इस पूरी प्रक्रिया में तापमान एक अहम भूमिका निभाता है चाहे ध्रुवों से आने वाली उच्च दवाब वाली ठण्डी हवा हो या समुद्र की सतह के तापमान से गरम हवा का ऊपर उठना हो। इसलिए इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि ग्लोबल वार्मिंग की वजह से उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों पर प्रभाव पढ़ रहा है। हाल में नये मशीनों और सुपर कम्प्यूटर की मदद से हो रहे अध्ययन साफ़ बात रहे हैं की ग्लोबल वार्मिंग उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की क्रमिकता, शक्ति और विनाशकारिता पर प्रभाव डाल रहे हैं।

ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन का उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों पर प्रभाव

ऑस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों की एक टीम ने ऑस्ट्रेलिया के चक्रवातों का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के आधार पर ऑस्ट्रेलिया के चक्रवातों और सामान्य तौर पर उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के सम्बन्ध में कुछ परिणाम प्रस्तुत किये हैं। इस टीम ने डॉ. सविन चन्द के नेतृत्व में काम किया है। डॉ. चन्द का कहना है कि पूरे उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में चक्रवातों की संख्या कम हुई है। ग्लोबल वार्मिंग की वजह से उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों के बनने की परिस्थितियाँ प्रभावित हुई हैं इसलिए इनकी संख्या में पूरे विश्व में कमी देखी जा सकती है। लेकिन इसके साथ ही चक्रवात बन जाने की स्थिति में इसे खिला-पिला कर मोटा करने की भौतिक परिस्थितियाँ यानी उच्च तापमान और नमी पहले से ज़यादा प्रबल हैं। इसलिए उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की संख्या कम होगी लेकिन इनकी तीव्रता, ऊर्जा और विनाशकारिता कहीं अधिक होगी। डॉ. चन्द ने अध्ययन में बताया की 1900 से 2022 तक में ऑस्ट्रेलिया में उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की संख्या 11 प्रतिशत कम हुई है और 1950 के दशक से संख्या में गिरावट देखी गयी है। इस तरह डॉ. चन्द का कहना है कि चक्रवातों की संख्या कम होगी लेकिन विनाश का पैमाना इसके उलट होगा। यानी चक्रवात पहले से कहीं अधिक जान-माल का नुक़सान और विनाश करेंगे। चक्रवातों की तीव्रता मापने वाली सफ़ायर-सिम्पसन स्केल (पैमाने) पर उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की तीव्रता 3 या 3 से ऊपर की श्रेणी की रहेगी। सफ़ायर-सिम्पसन स्केल पर 3 या 3 से ऊपर के चक्रवात 'बेहद गम्भीर' श्रेणी में रखे जाते हैं।

दक्षिण कोरिया में उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों पर पुसान विश्वविद्यालय में 13 महीने लम्बा चला शोध अध्ययन अब तक का सबसे गहन शोध अध्ययन है। हाई-रेज़ोल्युशन अलेफ सुपर कम्प्यूटर पर किया गया सिम्युलेशन ने बेहद क़रीब से चक्रवातों का अध्ययन किया है।

अलेफ सुपर कम्प्यूटर पर सिम्युलेशन करने वाले डॉ. सुन-सियोन ली का कहना है कि हमने सिम्युलेशन के आधार पर भविष्य में उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की संख्या और तीव्रता में परिवर्तन की जो भविष्यवाणी की है उसे वर्तमान में घटित हो रहे चक्रवात सिद्ध कर रहे हैं। इसलिए उनका कहना है कि इस अध्ययन के आधार पर ग्लोबल वार्मिंग की वजह से उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों में आ रहे परवर्तन की अवधारणा का वे समर्थन करते हैं। इस अध्ययन के अनुसार वयुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड के बढ़ने से उष्णकटिबन्धीय वयुमण्डल की गति धीमी पड़ेगी यानी इसकी गति में गिरावट आयेगी और इससे उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों का पैदा होना कठिन होगा। हालाँकि कम ही सही, जो चक्रवात पैदा होंगें उन्हें तीव्र और शक्तिशाली बनाने के लिए नमी और ऊर्जा का स्तर कहीं अधिक होगा। नतीजतन ये चक्रवात सफ़ायर-सिम्पसन स्केल पर तीन या तीन से ऊपर की श्रेणी में होंगे। आने वाले समय में भारत और प्रशान्त महासागर में तीन या तीन से ऊपर की श्रेणी के चक्रवातों की संख्या में वृद्धि की भविष्यवाणी इस अध्ययन ने की है। आने वाले समय में 'बेहद गम्भीर' श्रेणी के चक्रवात भारत के तटों से टकरायेंगे।

इस अध्ययन ने यह भी बताया है कि समुद्र की सतह के तापमान का 1.8 डिग्री सेल्सियस से 3.7 डिग्री सेल्सियस बढ़ने की वजह से चक्रवातों के कारण होने वाली वर्षा 9.5 प्रतिशत तक बढ़ेगी। इसकी वजह से तटीय इलाक़ों में भयंकर बाढ़ आयेगी क्योंकि चक्रवातों से होने वाली भारी वर्षा समुद्र में विशाल मात्रा में पानी उड़ेलती है।

अलेफ सुपर कम्प्यूटर आधारित अध्ययन डॉ. चन्द के नेतृत्व वाले अध्ययन, नेशनल ओसेआनिक एण्ड ऐट्मस्फेरिक ऐड्मिनिस्ट्रैशन के उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों पर किये अध्ययन और क्लाइमेट चेंज असेस्मेंट के अध्ययन को सत्यापित करते हैं। या कह सकते हैं कि अब तक जो सम्भावना थी उसे प्रमाण मिल गया है। आने वाला समय में तटीय क्षेत्रों में भयंकर विनाश की सम्भावना है।

बिपरजॉय चक्रवात को भी अगर हम इस पूरे परिदृश्य में रख कर देखें तो हमें समझ आयेगा कि यह चक्रवात भी अपने आप में भविष्य के ख़तरे की ओर ही इंगित कर रहा है। समुद्र स्तर का बढ़ता तापमान चक्रवातों की संख्या और शक्ति को प्रभावित कर रहा है; बिपरजॉय चक्रवात इसका प्रातिनिधिक उदाहरण है। बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के चक्रवात इस क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। भारतीय मौसम विभाग के आँकड़ों के आधार पर अध्ययन कर भारतीय वैज्ञानिक शिक्षण और शोध संस्थान ने बताया है कि पिछले 130 साल के हर दशक में औसतन 50.5 चक्रवात बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में बने हैं। इस क्षेत्र में तीव्र और विनाशकारी चक्रवात मुख्य रूप से बंगाल की खाड़ी में बनते हैं और संख्या भी इन्हीं चक्रवातों की अधिक होती है। हालाँकि हाल के वर्षों में बंगाल की खाड़ी के चक्रवातों में 8 प्रतिशत की कमी आयी है। लेकिन साथ ही इनकी तीव्रता और शक्ति भी बढ़ी है।

(पेज 16 पर जारी)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

बोलते आँकड़े – चीख़ती सच्चाइयाँ

डीज़ल-पेट्रोल के नाम पर जारी लूट

पिछले क़रीब नौ साल के अपने कार्यकाल में मोदी सरकार ने पेट्रोलियम उत्पादों पर भारी कर लगाकार सरकारी ख़ज़ाने में पच्चीस लाख करोड़ रुपये से भी ज़्यादा की कमाई की है। मोदी सरकार को आयात किया गया कच्चा तेल बेहद सस्ते दामों पर मिला है। डीलर को मिलने वाला हिस्सा पेट्रोल की क़ीमत का 36 प्रतिशत ही होता है, जो कि सरकार ने पेट्रोल पम्प मालिकों, बिचौलियों आदि को लाभ पहुँचाने के लिए ही रखा है। ऊपर से, केन्द्र सरकार इस पर 37 प्रतिशत टैक्स वसूलती है और क़रीब 23 प्रतिशत वैट राज्य सरकारें लगाती हैं। शेष 3-4 प्रतिशत डीलर का कमीशन, ढुलाई ख़र्च आदि होता है। यानी ये सरकारों के टैक्स ही हैं जो डीज़ल और पेट्रोल की कीमतों को 90 और 100 के पार पहुँचा दे रहे हैं।

2013 तक पेट्रोल पर केन्द्र और राज्यों के टैक्स मिलाकर क़रीब 44 फ़ीसदी तक होते थे, अब ये टैक्स 100-110 फ़ीसदी तक कर दिये गये हैं। आइए, मोदी सरकार द्वारा पेट्रोल व डीज़ल पर की जा रही लूट को समझते हैं।

मार्च '23 में अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमत 68 डॉलर प्रति बैरल थी, यानी 159 लीटर की कीमत 68 डॉलर। यानी, प्रति लीटर कच्चे तेल की अन्तरराष्ट्रीय कीमत थी 0.427 डॉलर यानी मात्र 35.32 रुपये। एक लीटर कच्चे तेल के परिशोधन (refining) का ख़र्च है लगभग 3 रुपये। यानी, उपयोग योग्य प्रति लीटर पेट्रोल पर सरकार को ख़र्च करने पड़ते हैं कुल लगभग 38.32 रुपये। लेकिन हमारे लिए पेट्रोल 100 रुपये प्रति लीटर तक पहुँच गया। यानी, पेट्रोल की कुल कीमत में असल लागत केवल 38-39 रुपये के क़रीब है, जबकि आप दे रहे हैं 96 से 110 रुपये। यानी हर लीटर पर असल कीमत से 156% ज़्यादा तो आप सिर्फ़ टैक्स दे रहे हैं!

दुनिया के किसी भी देश में शायद ही पेट्रोल पर इतना भारी टैक्स लगता हो। मसलन, तेल पर इंग्लैण्ड में 61 फ़ीसदी, फ्रांस में 59 और अमेरिका में 21 फ़ीसदी टैक्स लगता है। यह डकैती नहीं तो क्या है कि माल की कीमत पर माल की कीमत से भी ज़्यादा टैक्स लगाकर जनता को बेचा जाये? मोदी ने ठीक ही कहा था: "धन्धा मेरे ख़ून में है, पैसा मेरे ख़ून में है!" (3 सितम्बर 2014, डेकन क्रॉनिकल, नरेन्द्र मोदी का बयान)।

यह साफ़ है कि देश में वित्तीय घाटे की भरपाई करने के लिए सरकार तेल पर भारी टैक्स लगा रही है। इस साल के बजट में पेट्रोलियम उत्पादों पर कुल सब्सिडी को रु. 9171 करोड़ से घटाकर रु. 2257 करोड़ कर दिया गया है। 2020-21 में यह रु. 37,000 करोड़ रुपये थी।

एक तरफ़ तमाम चीज़ों के दाम बढ़ते जा रहे हैं और दूसरी तरफ़, आम

मेहनतकश आबादी की घटती आमदनी

मेहनतकश आबादी की आय में या तो गिरावट आयी है या फिर वह लगभग स्थिर है। इस कारण से आम आबादी की ख़रीदने की क्षमता पहले से कम हुई है। एक ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार अगर आप रु. 25,000 मासिक कमाते हैं तो आप भारत की ऊपरी 10 प्रतिशत आबादी में आते हैं!

आपको बता दें कि भारत में 57 प्रतिशत मज़दूर रु. 10,000 मासिक से कम कमाते हैं और सभी मज़दूरों की बात करें तो उनकी औसत आय रु. 16,000 मासिक है। निश्चित तौर पर, इसमें सबसे कम कमाने वाले मज़दूर वे हैं जो कि अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और कुल मज़दूर आबादी का क़रीब 93 प्रतिशत हिस्सा हैं। यानी, एक ओर महँगाई सारे रिकॉर्ड तोड़ रही है, दूसरी ओर आम मेहनतकश आबादी की औसत आमदनी विशेष तौर पर कोविड महामारी के बाद से या तो ठहरी हुई है या फिर घटी है।

वित्तीय वर्ष 2021-22 के पहले नौ माह के दौरान ग्रामीण खेतिहर वास्तविक मज़दूरी में मात्र 1.6 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, जबकि ग्रामीण ग़ैर-खेतिहर वास्तविक मज़दूरी में 1.2 प्रतिशत की गिरावट आयी। भारत की राज्य सरकारों के कर्मचारियों की औसत वास्तविक आय में 2019 से 2021 के अन्त तक 6.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इसी दौर में मनरेगा मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी में मात्र 4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इसके अलावा, स्टॉक मार्केट में सूचीबद्ध 2800 कम्पनियों के कर्मचारियों की आय में 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, हालाँकि इसका बड़ा हिस्सा मध्यवर्गीय व उच्च मध्यवर्गीय कर्मचारियों के खाते में गया और आम मज़दूरों की मज़दूरी में बहुत ही कम बढ़ोत्तरी हुई है।

इसी बीच, महँगाई में 40 से 60 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी आयी, यानी इन सभी जमातों की असली आमदनी में कमी आयी और वह पहले से ग़रीब हुए। सबसे बुरी हालत अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों की रही। कोविड महामारी के दौरान ही उनकी औसत मज़दूरी में बढ़ी बेरोज़गारी के कारण 22 प्रतिशत की गिरावट आयी थी।

ज़मीनी स्तर की सच्चाई तो इससे भी भयानक है। श्रम-मंत्रालय के ही आँकड़ों के मुताबिक़ भारत में 45 फ़ीसदी मज़दूरों की मज़दूरी 10 हज़ार रुपये से भी कम है, जबकि महिला मज़दूरों (कुल मज़दूर आबादी का 32 फ़ीसदी) को 5 हज़ार रुपये से भी कम मज़दूरी मिलती है। ग्रामीण मज़दूरों की स्थिति और भी बुरी है। भारत में कृषि क्षेत्र में औसत मज़दूरी की दर 344 रुपये प्रतिदिन है। लेकिन सच्चाई यह है कि खेतों, भट्ठों, भवन निर्माण आदि में काम करने वाले मज़दूर प्रतिदिन 200-250 रुपये प्रतिदिन के रेट से काम करने पर मजबूर हैं। 1984 में जहाँ कुल उत्पादन लागत का 45 प्रतिशत हिस्सा मज़दूरी के रूप में दिया जाता था वह 2010 तक घटकर 25 प्रतिशत रह गया। अब तो वह और भी घट चुका है।

संगठित क्षेत्र में पैदा होने वाले हर 10 रुपये में मज़दूर वर्ग को केवल 23 पैसा मिलता है। ऊपर से मोदी सरकार द्वारा रहे-सहे श्रम क़ानूनों को भी ख़त्म किया जा रहा है और न्यूनतम मज़दूरी को क़ानूनी तरीके से कम किया जा रहा है। सरकार के श्रम मन्त्री प्रतिदिन के लिए तल-स्तरीय मज़दूरी 178 रुपये करने की घोषणा कर चुके हैं। यानी, मासिक आमदनी होगी महज़ 4,628 रुपये! अच्छा होता कि नेताओं, नौकरशाहों, मैनेजरों को यह न्यूनतम मज़दूरी स्वीकार करने पर मजबूर किया जाता, जो वैसे भी कुछ नहीं करते और परजीवियों की तरह जनता का खून चून रहे हैं। यह राशि आर्थिक सर्वेक्षण 2017 में सुझायी गयी तथा सातवें वेतन आयोग द्वारा तय की गयी न्यूनतम मासिक आमदनी 18,000 रुपये का एक-चौथाई मात्र है। हालाँकि आज रु. 18,000 भी इज़्ज़त की ज़िन्दगी जीने के लिए पर्याप्त मज़दूरी नहीं होगी।

यही नहीं पन्द्रहवें राष्ट्रीय श्रम सम्मलेन (1957) की सिफ़ारिशों (जिसके अनुसार न्यूनतम मज़दूरी,

(पेज 8 पर जारी)

बिपरजॉय चक्रवात आने वाले गम्भीर भविष्य की चेतावनी दे रहा है!

(पेज 15 से आगे)

अगर बात करें अरब सागर के चक्रवातों की तो हाल के वर्षों में इन चक्रवातों की संख्या और तीव्रता बढ़ी है। भारतीय उष्णकटिबन्धीय मौसम विज्ञान संस्थान के अनुसार अरब सागर के चक्रवातों की संख्या पिछले 4 दशकों में 52 प्रतिशत बढ़ी है। इसके अलावा इनकी तीव्रता और समयावधि भी पिछले 4 दशकों में बढ़ी है। पहले की तुलना में अब ये 260 प्रतिशत अधिक जीवित रहते हैं। इसकी वजह है अरब सागर के सतह के तापमान में वृद्धि। यह पिछले कुछ दशकों में 1.2 डिग्री से बढ़ कर 1.4 डिग्री सेल्सियस हो गया है।

इन सारे अध्ययन में यह बात स्पष्ट रूप से सामने आ रही है की ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों को प्रभावित कर रहे हैं उन्हें ज़्यादा विनाशकारी बना रहे हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था और ग्लोबल वार्मिंग

हमने देखा कि तमाम वैज्ञानिक शोध और अध्ययन चक्रवातों में आये परिवर्तन के लिए ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन को ज़िम्मेदार मानते हैं। लेकिन इन सारे अध्ययनों कि सबसे बड़ी कमज़ोरी यह होती है कि अपने अध्ययन में ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की वजह ये मानव गतिविधियों को बताते हैं। इन अध्ययनों में लिखा जाता है कि मानव गतिविधियों की वजह से वायुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। इस तरह अक़्सर यह निष्कर्ष निकल जाता है कि हर व्यक्ति पर्यावरण के विनाश के लिए ज़िम्मेदार है और इसलिए इसे सुधारने के लिए हर व्यक्ति अपने अपने स्तर पर प्रयास करे। जीवाश्म ईंधन से चलने वाले वाहनों की जगह साइकिल का उपयोग, प्लास्टिक की थैली या प्लास्टिक के सामान इस्तेमाल नहीं करना, प्रकृति में वापस लौटने और इस तरह के ही अन्य उपाय। लेकिन सच्चाई तो यह है कि पर्यावरण के विनाश के पीछे पूँजीवादी व्यवस्था है और मुनाफ़े के लिए इसकी अन्धी हवस ज़िम्मेदार है। मुनाफ़े की हवस में पूँजीवाद बेइन्तहाँ जंगलों को काटता जा रहा है। ग्लोबल फॉरेस्ट वाच के अनुसार पृथ्वी पर एक तिहाई प्राकृतिक वन क्षेत्र का नुक़सान हो चुका है। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारणों में से एक है जंगलों का तीव्र गति से कटना। संयुक्त राष्ट्र वन संसाधन मूल्यांकन (यूएन फॉरेस्ट रिसोर्सेज असेसेस्मेंट) के अनुसार विश्व स्तर पर प्रति वर्ष 47 लाख हेक्टेयर प्राकृतिक वनों का विनाश हो रहा है। जंगलों के कटने की गति निश्चित ही विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में अधिक है। स्वयं भारत में पिछले 30 सालों में 668,400 हेक्टेयर वन क्षेत्र का विनाश हुआ है। ग्लोबल फॉरेस्ट वाच की रिपोर्ट के अनुसार 2010 में 313 लाख हेक्टेयर प्राकृतिक वन का ह्रास हुआ जो कुल वन क्षेत्र का 11% है। वहीं 2021 में 127 हज़ार हेक्टेयर प्राकृतिक वन क्षेत्र का विनाश हुआ जो 64.6 मेट्रिक टन कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन के बराबर है। वैसे तो जंगलों के बेतहाशा कटना कहीं भी नुक़सानदेह है लेकिन सबसे विनाशकारी है अमेज़न के वर्षावनों का कटना। अगस्त 2019 से जुलाई 2020 तक कुल 11,088 स्क्वाइर किलोमीटर अमेज़न वर्षावन का विनाश ब्राज़ील की बॉल्सोनारो सरकार ने किया। बॉल्सोनारो सरकार ने खुले हाथों से पूँजीपतियों को खनन और कृषि के लिए अमेज़न के जंगलों का विनाश करने के अनुमति दी। बॉल्सोनारो के कार्यकाल में कहा जाता है की प्रति मिनट एक फुटबॉल पिच के जितना अमेज़न वन साफ किया जा रहा था। इससे जंगलों के कटने की दर का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। अमेज़न अत्यन्त आवश्यक कार्बन का भण्डार है जो ग्लोबल वार्मिंग की गति को धीमा करता है। अमेज़न के जंगल ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव को कम करने में महती भूमिका निभाते हैं। आज बढ़ते ग्रीन हाउस प्रभाव और ग्लोबल वार्मिंग की बड़ी वजहों में से एक अमेज़न वर्षा वनों का विनाश है। निश्चित ही इतनी व्यापक स्तर पर जंगल काटने का काम आम लोग नहीं करते। ये जंगल पूँजीवाद के मुनाफ़े की हवस के शिकार बन रहे हैं।

पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया अनियोजित और अराजक होने की वजह से पूरी उत्पादन प्रक्रिया प्रकृति और पर्यावरण के लिए गम्भीर संकट पैदा कर रही है। जीवाश्म ईंधन के जलने, जंगलों के कटने और कारखानों, मशीनों और कई बिजली संयंत्रों से निकलने वाले ग्रीनहाउस गैस वायुमण्डल की सतह पर एकत्र हो जाते हैं और सूर्य के ताप को अधिक मात्रा में वायुमण्डल में कैद करने लगते हैं जिससे ग्रीन हाउस इफेक्ट पैदा होने लगता है। इससे पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ता है यानी ग्लोबल वार्मिंग होती है।

1970 की तुलना में हिमनदों के मौसम से लिए संदर्भों से पता चलता है कि 2003 तक हिमनदों के 27.5 मीटर जमे बर्फ़ पिघल कर पानी बन गये हैं जिसका अर्थ है सभी हिमनदों के शीर्ष से 27.5 मीटर बर्फ़ को काट कर हटा देना। 1880 से अब तक औसत वैश्विक जलस्तर 8-9 इंच (21-24 सेन्टमीटर) बढ़ गया है। ग्रीनलैण्ड बर्फ़ की परत (आइस शीट) से बर्फ़ का पिघलना 7 गुण अधिक बढ़ गया है। 1992-2001 के बीच प्रति वर्ष 34,00 करोड़ टन आइस शीट का नुक़सान हुआ वही 2012 से 2016 के बीच 24700 करोड़ टन प्रति वर्ष नुक़सान हुआ। मतलब अब प्रति वर्ष नुक़सान में 7 गुणा की वृद्धि हो गई है। हिमनदों और बर्फ़ की परत (आइस शीट) का पिघलना और समुद्र के तापमान के बढ़ने की वजह से समुद्र के जल के आयाम का फैलना समुद्र के जलस्तर के बढ़ने का मुख्य कारण है। 1993 की तुलना में 2021 में औसत वैश्विक जलस्तर 97 मिलीमीटर अधिक हो गया जो अभी तक के जलस्तर में सबसे अधिक वार्षिक औसत वृद्धि है। जलस्तर के बढ़ने से प्राणघातक और विनाशकारी चक्रवात जैसे हर्रिकेन कैटरीना, सुपरस्टॉर्म सैन्डी, हर्रिकेन माइकल, साईक्लोने अम्फान की संख्या बढ़ेगी और यह पहले से कहीं अधिक अन्दर तक भूभाग को प्रभावित करेंगे और भयंकर विनाश का कारण बनेंगे।

अगर हम ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की बात कर रहे हैं और इसके लिए पूँजीवादी उत्पादन पद्धति और व्यवस्था को ज़िम्मेदार नहीं ठहरा रहे हैं तो ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के प्रति हमारी चिन्ता और उसे कम करने के हमारे प्रयास बागवानी से अधिक कुछ भी नहीं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016